अर्थः—आत्मानो परमभाव जे ज्ञान, तदनुयायी दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, कर्तृता, भोक्तृता, ग्राहकता, व्यापकता, रक्षणता, रमणता, आधाराधेयता विगेरे अनंत स्वधर्मो जे अनादिकालथी कर्ममलवडे लिप्त थएला हता—बाधक भावे परिणमता हता, ते शुक्लध्याननी तिक्ष्ण आंच वडे कर्ममल भस्म थइ जवाथी संपूर्ण प्रगट थया अर्थात् निराबाध—स्वतंत्र पणे पोतपोताना कार्यभावे परिणमवा लाग्या एटले शुद्ध परिणति रूप अनुपम लक्ष्मीने वर्या—तेना स्वामी थया. तेज परमात्म जिनेश्वर देव, क्रोध मान माया लोभ आदि मोह नीय कर्मनी अठावीश प्रकृतिथी रहित तथा ज्ञानादिक गुणना दरिया अर्थात् ज्ञानादि गुणना अखूट निधान छे. एटले जेम दरियामांथी जल खूटे नहि तेम तेमनामांथी कोइ पण काले ज्ञानादि गुणो—पर्यायो खुटवाना—क्षीण थवाना नथी, अनंतकाल सुधी एक सरखी रीते परिणम्यांज करशे ॥६॥

अवलंबन उपदेशक रीते, श्री सीमंधर देव। भजीये शुद्ध निमित्त अनोपम, तजीये

भव भय टेवरे स्वामी ॥ वि० ॥७॥

अर्थ-श्री सीमंधर देवमां साध्य पद पूर्ण पणे प्रगट होवाथी तेज पुष्ट-अनुपम निमित्त हेतु छे (साध्य साध्य धर्म जेमांहे होवे रे ते निमित्त अति पुष्ट, तथा च-पुष्ट हेतु जिनेंद्रोय, मोक्ष सद्भाव साधने) तथा सर्वज्ञ अने वीतराग होवाथी आप्तमोक्षमार्गना साचा उपदेशक तथा सर्व आत्मरिद्धि संपूर्ण पणे प्राप्त होवाथी परम आधार भव समुद्रमां बुडता भव्य प्राणीयोने जहाज समान, भवाटवीमां सथ्थवाह समान छे. न्याय पूर्वक एम सिद्ध होवाथी तेउनी भक्ति करीये अर्थात् तेमनी आज्ञा आपणा शिर उपर चढावीए सन्मानीये. कह्युं छे के "आणाकारी भत्तो, आणा छेइऊ अभत्तात्ति" माटे तेमनी आणा प्रमाणे वर्त्तीए. मिथ्यात, अज्ञान, कषाय, प्रमाद, अविरति रूप भयंकर भव भ्रमणनी टेवनो त्याग-परिहार करीये ॥ ७ ॥

शुद्ध देव अवलंबन करतां, परिहरीये

अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण तथा परिग्रह संग्रह विरमण रूप पंचमहाव्रत तथा क्षांति, मार्दव, आर्यव, मुक्ति, तप, संयम, शौच, सत्य, आकिंचन तथा ब्रह्मचर्य आदि सर्वे धर्मोमां अनुवृत्ति धरावनार अहिंसा-दया धर्म छे. जेमां सर्वे धर्मनो समावेश थइ जाय छे. उक्तंच—सव्वाउंवि नइउं, जह सायरंमि निवडंति । तह भग, वई अहिंसिं, सव्वे धम्मा सम्मिलान्ति ॥ तथा जेने सर्व मतावलंबीउं स्विकारे छे—सन्माने छे "अहिंसा परमो धर्म, हिंसा सर्वत्र गर्हिता" परन्तु जैन शिवाय अन्य मतावलंबीउं अहिंसा—दयामां वर्त्ती शकता नथी कारण के तेउं हिंस्य हिंसा तथा हिंसाना कारणोने यथार्थ संपूर्ण ंलखता नथी.

सर्वज्ञ तीर्थंकर देव द्रव्यहिंसा तथा भावहिंसा एम हिंसाना बे प्रकार प्ररूपे छे—पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय अने वनस्पतिकाय एम पंच स्थावरकायिक एकेंद्रि जीवो तथा द्वद्रिय आदि त्रस जीवोनां पांच इंद्रियो, मनोबल, वचनबल, कायबल,

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद तथा योगेनुं सेवन करवुं ने हिंसानां कारणो छे ते कारणो सेववाथी हिंसा थाय छे कहुं छे के "कारण जोगे कारज निपजेरे, एहमां कोइ न वाद। पण कारण विणु कारज साधीए रे, ते निज मति उन्माद" एम स्याद्वाद नय युक्त जिन प्ररूपित द्रव्यहिंसा तथा भावहिंसाना स्वरूपथी अजाण तथा तेना कारणोथी अजाण मिथ्यादृष्टी जीवो एक समय मात्र पण अहिंसाभावमां वर्त्ती शकवाने असमर्थ छे तथापि मोहमद्यमां बेभान थयेला हिंसामां वर्त्तता छतां हमे दया पालीए छीए-दयालु छीए एम पोताना जीव्हाग्रथी जल्पना तथा मनमां कल्पना करे छे पण तेथी शुं ? सांची दया पाल्या शिवाय तेना परमोत्तम फल मोक्ष सुखने पामी शके नहि।

पण जे स्याद्वाद नय युक्त जिन प्ररूपित द्रव्य-हिंसा तथा भावहिंसाना स्वरूपनुं तथा तेना कारणोनुं सम्यकज्ञान धरावे छे-जे परमोत्तम फलना उत्सुक छे हिंसानुं फल जे भवभ्रमण तेथी उद्विग्न

भयभीत छे एवा सम्यक्‌द्रष्टी जीवोज अहिंसामां वर्त्ती शकवाने समर्थ छे "(पढमं नाणं तउं दया)" जे जे अंशे अहिंसाभावमां वर्त्ते छे तेने तेटला अंशे अहिंसक कहिए माटे चोथा गुणस्थानथी मांडी उपला उपला गुणस्थानोमां अहिंसक-दशा नय प्रमाण अधिकी अधिकी वर्त्ते छे पण हे भगवंत ! आप हिंसाना सर्व कारणोथी दूर वर्त्ती होवाथी सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वदा अहिंसक भावमां वर्त्तो, छो राग द्वेष रहित होवाथी सर्व जीवो ऊपर एक सरखी रीते दया राखोछो, तेथी सर्व दयालु जीवोमां आप राजा समान शिरोमणि छो, तेथी हे दयालराय श्री युगंधर स्वामी ! करुणानिधान तथा समर्थ जाणी आप प्रति विनंती उच्चारुं छुं कारणके दयालु तथा समर्थ होय तेज सेवकनां विनंति मनोर्थने परिपूर्ण करे माटे मुज सेवकनी विनंती करुणा भावे चित्तमां धारी—"पर परिणति रंगथी मुजने नाथ उगार"- हे नाथ ! हे स्वामी ! अनादि विभाव वशे पुद्गल पर्याय जे शरीरादिक तेमां अहंपणुं मानी ते ऊपर अत्यंत राग करी तेमां तल्लीन थइ रह्यो छुं तथा ते शरी-

रादिकने प्रशस्त—हितकारी कुटुम्बी जनो मित्रवर्ग नोकर चाकर तथा धन धान्य मणि औषधी आवास आदि अनेक पुद्गल पर्यायोमां तथा पंचेंद्रिना अनेक मनोज्ञ विषयमां राग वशे तल्लीन थइ रह्यो छुं, तेने मेलववा राखवा माटे अनेक प्रयास करूं छुं, अनेक विकल्प जाल रचुं छुं. तेनी तृष्णारूपी आगमां निरंतर प्रज्वलित थाउं छुं, तेनो वियोग थाय ते माटे भय भोगवुं छुं, तेना वियोगे शोक संताप आक्रंद विगेरेनो भोक्ता बनुं छुं, अने पोतानी सहज अनंत स्वतंत्र, अप्रथग् भूत स्वक्षेत्रवर्त्ती अविनश्वर सुख निदान आत्म परिणतिथी वियोगी रहुं छुं माटे हे भक्त वत्सल प्रभु ! एवी दुष्ट परपरिणतिना रंगथी मुजने हवे शीघ्रमेव उगारो ॥ १ ॥

कारक ग्राहक भोगतारे, में कीधी महारायेरे, दयाळराय ॥ पण तुज सरीखो प्रभु लहीरे, साची वात कहायेर, दया० ॥२॥

अर्थ--सर्व द्रव्यो अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व अगुरुलघुत्व अने सत्व स्वभाववंत होवाथी पोताना गुणपर्यायोना कर्त्ता, ग्राहक, व्यापक

आदिपणे पोतानी सत्ताभूमिमां सर्वदा वर्त्ते छे, तथा वली "क्षेत्र काल भावानाम् एक समुदायित्वं द्रव्यत्वम्" क्षेत्र काल भावनुं एक समुदायिपणुं ते द्रव्यत्व छे माटे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव परस्पर अभेद छे- अपृथग भूत छे तेथी कोइ द्रव्य बीजा द्रव्यना क्षेत्र काल भावमां प्रवेश करवा सर्वथा असमर्थ छे माटे निश्चय नये कोइ द्रव्य अन्य द्रव्यनो कारक कर्त्ता, भोक्ता, ग्राहक, व्यापक, आधार, आधेय विगेरे थइ शके नहि, तथापि जीव-मां अनादि विभाव स्वभाव होवाथी हुं मिथ्यात्व अज्ञान वशे परपरिणति-पुद्गल पर्यायो विषे कर्त्ता भोक्ता, ग्राहक, व्यापक आदि बुद्धि करी मारी आत्मीक स्वतंत्र रिद्धिथी वियोगी रह्यो पण हे युगंधर स्वामी ! आपने संपूर्ण नये पोताना परिणामना कर्त्ता, ज्ञाता तथा तेमांज रमण करनार तथा तेनोज आस्वादन-अनुभव लेनार होवाथी साचा प्रभु जाणी आप प्रति हुं मारी साची कथा निवेदन करुं छुं ॥ २ ॥

यद्यपि मूल स्वभावमेंरे, पर कर्त्तत्व

विभावरे ॥ दयालराय ॥ अस्ति धर्म जे माहरोरे, एहनो तथ्य अभावरे ॥ दयालराय ॥ श्री० ॥ ३ ॥

अर्थ–अनादि कालथी जो के माहरा ज्ञान दर्शन चारित्ररूप आत्म गुणमां परकर्तृत्वादि विभावनो स्वश्लेष थयेलो छे तेथी हुं अनादिकालथी परकर्तृत्वादि विभाव रूप परिणमुं छुं तो पण सत्तागते रहेला माहरा अस्तिधर्ममां–सामान्य स्वभावमां खरेखर ते विभावनो अभाव छे कारण के सामान्य स्वभाव सदा निरावरण छे; माटे जो हुं माहरा अस्तिधर्म तरफ लक्ष आपुं तेने प्रगट करवा रुचि धरूं तो निश्चय कर्मजन्य उपाधि रूप विभावनो समूल नाश करी संपूर्ण शुद्ध सुखनिधान अस्तिधर्मनो भोगी थाउं, सादिअनंतकाल सुधी ए अवस्थामां अवस्थित रहुं ॥ ३ ॥

पर परिणामिकता दशारे, लहि पर कारण योगरे, दयालराय ॥ चेतनता परगत थईरे, राची पुद्गल भोग रे, दयालराय ॥श्री०॥४॥

अर्थ–ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तथा भावकर्मना उदय वशे पर परिणामिक दशाने प्राप्त थयो छुं, अर्थात् पर द्रव्यना परिणामने पोतानो परिणाम मानुं छुं एटले मन वचन अने कायानी क्रियाने आत्म क्रिया मानुं छु तेथी मारी चेतनता पर परिणाममां व्यापी–परगत थई–पुद्गल पर्यायोने भोगववामां राची–आसक्त थई–लीन थई–त्यांज स्थित थई तेथी आत्म परिणामनो भोग लेवा अवकाश मल्यो नहीं ॥ ४ ॥

अशुद्ध निमित्त तो जड अछेरे, वीर्य शक्ति विहीनरे ॥ द० ॥ तुं तो वीरज ज्ञान्यांरे, सुख अनंते लीनरे ॥ द० ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थ–आत्माने अशुद्ध परिणामे अर्थात् अज्ञान, मिथ्यात्व अने कषाय रूप परिणमवामां शुभाशुभ कर्मोदय वडे पुद्गल द्रव्य गुण पर्यायनो संबंध ते निमित्त छे पण ते शुभाशुभ कर्मोदय, जड–चेतनता रहित तेमज वीर्य शक्ति रहित होवाथी तेंउ आत्माने अशुद्ध परिणामे परिणमाववामां पोतानी मेले कारण बनवाने असमर्थ छे, तथा कारण पद तो

उत्पन्न पर्याय छे माटे ज्यारे कर्त्ता कार्य साधवानो रुचीवंत थइ तेने निमित्तमां वापरे त्यारे तेमां कारण पद उत्पन्न थाय छे. "ए कारका कर्तृराधिना" जो आत्मा प्रमाद भावमां वर्त्ते तो ते शुभाशुभ कर्मोदय अशुद्ध परिणामनुं निमित्त थाय पण पोते सचेत थइ पोताना शुद्ध कार्यनो कर्त्ता थाय त्यारे कारकचक्र सुलटे अने शुभाशुभ कर्मोदये अशुद्ध परिणामे परिणमे नहि तो ते पुद्गलो निमित्त पण थइ शके नहि. जेम कुंभार घट कार्यनो रुचिवान थाय नहि, तथा दंड चक्रादिने ते घट कार्य साधवामां वापरे नहि, तो दंड चक्रादि तेवारे घट कार्यना निमित्त कहेवाय नहि. पण हुं अनादि विभाव वशे राग द्वेषे परिणमवानी द्रढ टेवथी ते पुद्गल जडमां कारण पद उत्पन्न करी अशुद्ध परिणामे परिणमुं छुं, तेथी आत्मिक शुद्ध कार्य करवामां आत्म वीर्य अत्यंत हीन थइ रह्यो छुं, अर्थात् अनंतज्ञान अनंत-दर्शन अनंतसुखरूप अनुपम आत्म व्यक्तिथी रहित कंगाल बनी अत्यंत पराधिन, दरिद्र-दयामणि अवस्थाने भोगवुं छुं पण हे प्रभु! तमे तो अनंत ज्ञान वीर्यना परिपूर्ण पणाथी-पूर्ण व्यक्तिथी सहज,

अकृत्रिम, स्वतंत्र, एकांतिक, अंतातीत, अव्याबाध आत्मीक सुखमां लीन-संतृप्त-निमग्न थइ रह्या छो ॥ ५ ॥

तिण कारण निश्चय कर्यो रे, मुज निज परिणति भोगरे । द० । तुज सेवाथी नीपजेरे, भांजे भव भय शोगरे ॥द० ॥ श्री० ॥६॥

अर्थ-तेथी न्याय युक्त ज्ञानद्रष्टिथी मने एवो निश्चय थयो छे के हे भगवंत ! कर्म रूप रजथी सर्वथा निर्लेप स्फटीक समान तमारा संपूर्ण, निर्मल पवित्र गुणोनुं सेवन करतां-भक्तिकरता माहरी आत्म परिणति रूप अबाध्य अक्षूर स्वतंत्र पूर्णानंदमय सहज आत्म संपदाना भोगनी मने प्राप्ति थशे तथा. "भांजे भव भय सोग" अनादि कालथी चार गतिरूप भवसमुद्रमां अज्ञान वशे अनेक दुःसह दुःखो तथा तज्जान्य भय, शोक, संताप, आक्रंद विगेरे सहुं छुं, तेनो सहज लीलामात्रमां नाश थशे ॥ ६ ॥

शुद्ध रमण आनंदता रे, ध्रुव निस्संग

स्वभाव रे ॥ द० ॥ सकल प्रदेश अमूर्त्ततारे, ध्यातां सिद्धि उपायरे ॥ द० ॥७॥

अर्थ-अचल, अबाधित, निरावरण, शुद्ध परमात्म पद रमण-अनुभवजन्य आनंदने तथा पोताना ध्रुव अर्थात् पोताना द्रव्य क्षेत्र काल भावे सदा सत् (दव्वं गुण समुदाउ, खित्तं ओगाह वट्टणा कालो । गुण पज्जाय पवत्ति भावो निअ वत्थु धम्मो सो) अनंत अन्वय गुणनो पिंड तथा निस्संग-सकल परभाव, परिग्रहथी अतीत एवा आत्मभावने तथा अलेशी, अस्पर्शी, अगंधी अवर्णी, अरसी, अक्रोधी, अमायी, अमानी, अलोभी, अवेदी आदि अनेक व्यतिरेक गुणना समूहरूप सकल प्रदेश अमूर्त्ति पिंड आत्म द्रव्यने सर्वे परद्रव्यनी मूर्छाथी पोतानी आत्म परिणति वारी पोतानी आत्म भूमिमां स्थित करी-लीन करी पोतानी सर्वे वीर्य शक्ति एकत्र करी एकाग्र चित्ते ध्यातां अमूर्त्त परमात्मपदनी सिद्धि थाय-ध्याता ध्येयनी एकता थाय ॥ ७ ॥

सम्यक तत्त्व जे उपदिश्योरे, सुपात्रो तत्त्व जणायरे ॥द०॥ श्रद्धा ज्ञाने जे ग्रह्योरे, तेहिज कार्य करायरे ॥द०॥ श्री० ॥८॥

अर्थ—द्रव्यना सर्व पर्यायना ज्ञान विनाना एकांत वादीयो (मिथ्या वादीयो) (एकांते होइ मिथ्यतो) ना विडंबनारूप भव भ्रमणना हेतुभूत दुर्नयथी परिपूर्ण अज्ञान जन्य सिद्धांतथी उपजता अज्ञानरूप अंधकारना समूहनो नाश करनार सकलनय तथा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणथी अबाधित स्याद्वाद युक्त, अव्याप्ति अतिव्याप्ति तथा असंभवादि सकल दूषणो रहित जीवादि तत्त्वोनु सत्य स्वरूप प्रतिपादन करनार. जिनेश्वरना परम कल्याणकारी वचनो श्रवण मनन निधिध्यासन करतां शंसय विपर्यय अने अनध्यवसाय रहित तत्त्व स्वरूपनु सम्यक्ज्ञान थाय अने सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान युक्त जो आत्म स्वरूप जाणीने ग्रहण करीये तोज परमात्म सिद्धिना साधक बनी शकीए ज्यांसुधी आत्मद्रव्यनुं सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन थयुं नथी त्यांसुधी आदरेलुं चारित्र ते सम्यक विशेषणने प्राप्त थइ शके नहि अने सम्यक्चारित्र

विना कदापि काले मोक्षनी प्राप्ति थइ शके नहि. कह्युं छे के "विरआ सावज्जाउं, कषाय हीणा महव्वय धरावी । सम्मद्दिठी विहुणा, कयावि मुक्खं न पावंति" तथा "नयगम भंग पमाणेहि, जो अप्पा सायवाय भावेण । मुणइ मोक्ख सरुवं समादिट्ठ सो नेउं"॥८॥

कार्य रुची कर्त्ता थयेरे, कारक सवि पलटायरे ॥ द० ॥ आतम गते आतम रमेरे, निज घर मंगल थायरे ॥ द० ॥९॥

अर्थ–ज्यांसुधी जीव मिथ्यात्व गुणस्थाने वर्त्ते छे–सम्यक्दर्शननी प्राप्ति थइ नथी, त्यांसुधी अनात्म वस्तुमां आत्मबुद्धि–अहंपणुं माने छे अर्थात् पुद्गल स्कंधोथी बनेलुं चैतन्यशून्य जे शरीर तेमां लोलीभूतपणे परिणमि पोतानुं आत्म अंग माने छे तथा ते शरीरने जे प्रशस्त, हितकारी पदार्थो–स्त्री धन कुटुंबादिने पोतानां हितकारी माने छे, तेऊमां रागरसे रीझे छे. संसार भ्रमण परिपाटीने वधारे छे (जो अपसत्थो रागो, वड्ढई संसार भ्रमण परिवाडी । विसयाइसु सयणा–

इसु ईठत्तं पुग्गलाईस) अने ते शरीरादिने पोता ना साध्य जाणी निरंतर तेने साधवा माटे अनेक प्रयास करे छे-तेनेज पोतानुं कार्य जाणे छे एम अज्ञान वशे पोते पर कर्तृत्व भावे परिणमे छे तेथी कारकचक्र शुद्ध स्वभावथी विरुद्ध बाधकभावे परिणमे छे. पण ज्यारे आत्मा योग्य कारण वडे सम्यक्ज्ञाननो लाभ पामे, अनंत परमानंदमय संपूर्ण सुखना हेतु परमात्म पद रूप पोताना शुद्ध साध्यने ओलखे, त्यारे पर साध्य तरफथी अरूचो थाय अने पोतानुं शुद्ध साध्य साधवानी रूची थाय शुद्ध कार्य करवानो अभिलाषी थाय त्यारे जे कारकचक्र बाधकभावे अर्थात् आत्माना ज्ञान दर्शन सुख वीर्यनो घात करवा रूप कार्य परिणमतु हतुं ते साधक भावे एटले शुद्ध ज्ञान दर्शन सुख वीर्य साधवा रूप परिणमे एटले आत्म पोताना शुद्ध परिणामे वर्त्ते-तेमां रमण करे-त्यांज स्थित थाय एम थतां आत्माना सर्व प्रदेशो मंगल थाय अर्थात् कर्म रूप रज गली जाय-अत्यंत सुख निधाननो लाभ थाय ॥ ९ ॥

त्राण शरण आधार छोरे, प्रभुजी भव्य सहायरे ॥ द० ॥ देवचंद्र पद नीपजेरे, जिन

कोई पण काले द्रव्य ते पर्यायथी हीण क्षीण थाय नहि. कारण के तीरोभावे रहेला पर्यायो आवीर्भाव थाय छे अने ते पाछा तीरोभूत थाय छे एम परावर्त्त चक्रे परिणमे छे. उक्तंच- संमत्ति ग्रंथे-"दव्वं पज्जाय विउअं, दव्व वियुत्ताय पज्जाया नत्थि उप्पायव्वय भंगाइ दविय लरकण एयं" तथांच पंचास्तिकाय समयसारे-"दव्वं सल्लरकणियं, उप्पादव्वय ध्रुवत्त संजुत्तं । गुण पज्जाया सयं वा, जं तं भरमंति सव्वण्हु" ॥ १ ॥

द्रव्यथकी छकायने; न हणे जेह लगार ॥ प्रभुजी ॥ भावदया परिणामनो, एहिज छे व्यवहार ॥ प्रभुजी ॥ वा० ॥ २ ॥

अर्थ-पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय वनस्पतिकाय अने त्रसकाय ए छ कायना जीवना द्रव्यप्राणने हणवा हणावबा तथा हणताने अनुमोदना करवी ए द्रव्यहिंसा छे ते द्रव्यहिंसामां भावहिंसाना कारणनी भजना छे. तेथी भावहिंसानो त्यागी द्रव्यहिंसा आदरे नहि-थवा दे नहि-सावचेत पणे वर्त्ते-समिति पूर्वक वर्त्ते अर्थात्

छकायना जीवोनी द्रव्यहिंसानो त्याग करवो ते भाव दयानो तथा भावदयाना परिणामीनो व्यवहार छे. द्रव्यअहिंसा ते भावअहिंसानो व्यवहार-कारण छे ॥ २ ॥

रूप अनुत्तर देवथी, अनंतगुणु अभिराम ॥ प्रभुजी ॥ जोतां पण जग जंतुने न वधे विषय विराम ॥ प्रभुजी ॥ वा० ॥ ३ ॥

अर्थ-सर्व जीवोने आ संसार जन्य जन्म जरा मरणादि रूप भयंकर दुःखथी छोडावी रत्नत्रय पमाडी अनंत आत्मीक परमानंदना भोक्ता करूं एवी उत्कृष्ट भावदयाना योगे अत्यंत तीव्र शुभ परिणाम वडे-सर्वोत्कृष्ट पुण्यानुबंधी पुण्यना उदये हे बाहु जिनंद्र! आपनुं रूप लावण्य कांति, विजय विजयंत जयंत अपराजीत अने सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवो करतां पण अनंतगुणुं अभिराम, अतिशययुक्त, सर्वोपरी, मनोहर, रमणीय, आह्लादकारी छे. उक्तंच-ः:जाकी देहद्युतिसों दसौं दिशा पवित्र भई; जाके तेज आगे सब तेजवंत रुके है। जाको रूप निरखी थकित महा

रूपवत; जाकी वपुवाससो सुवास और लुके है ॥ जाको दिव्य धुनो सुनि श्रवनको सुख होत जाके तन लच्छन अनेक आइ ढुके है। तेइ जिनराज जाके कहे विवहार गुन, निहचै निरखि शुद्ध चेतनसों चुके है ॥ " एवुं अत्यंत देदिप्यमान अनुपम औदारिक आपनुं मनोहर रूप जोतां-निरखतां छतां पण विषयातुरताने अवकाश मलतो नथी परंतु आपनी शांत, दांत, गंभीर अने निश्चल मुद्रानुं दर्शन पामी विषयोथी उपशान्त चित्त थाय छे ॥ ३ ॥

कर्म उदय जिनराजनो; भविजन धर्म सहाय ॥ प्रभुजी ॥ नामादिक संभारतां, मिथ्या दोष विलाय ॥ प्रभुजी ॥ बा० ॥४॥

अर्थ- "सवि जीव करुं शासन रसी; इसि भाव दया मन उलसी" एहवा अत्यंत तीव्र शुभ राग युक्त भावदयाना परिणाम वडे बंधायला तीर्थंकर नामकर्मना उदय वडे हे त्रिलोक पूज्य ! आ पारावार दुःखनिधान संसार समुद्रमां बूडता भव्य प्राणियोनो उद्धार करवा माटे सर्वे दूषणो

रहित अने पांत्रीश गुण सहित, नय निक्षेप पक्ष प्रमाण युक्त जीवा जीवादि तत्त्वनो सम्यक प्रकारे उपदेश आपो छो ए आपनो कर्म उदय निर्विवाद पणे "भवि जन धर्म सहाय" अनादि कालथी ज्ञानावरणादि कर्म रज वडे मलिन थएला-लिप्त थएला भव्य जीवोना आत्म धर्मने एवंभूत नये प्राप्त थवा सहाय-निमित्तभूत छे. तथा हे तीर्थ-नाथ! आपना नामादिक चार निक्षेप संभारतां-स्मरण करतां-लक्षमां लेनां मिथ्यात्वादि दुष्ट दोषोनो तत्काल अत्यंत अभाव थाय. " तीर्थ-संसार निस्तरणो-पायं करातीति तीर्थकृत्" इति वचनात्. जन्म मरण रूप संसार सागरथी तरी जवानो उपाय जे सम्यगदर्शन ज्ञान चारित्र ते तीर्थ छे. उक्तंच तत्त्वार्थ सूत्रे "(सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः)" ते रत्नत्रयरूप तीर्थने भव्य जीवोना हृदयमां स्थापन करनार शुद्ध निमित्त होवाथी आप तीर्थकर नामने संप्राप्त छो. तथा आपना निर्मल असंख्यात् आत्म प्रदेशमां ते रत्नत्रय भरपूर अभेद्य पणे वसी रह्यां छे ते स्थापनानिक्षेपो. तथा आपनो आत्म द्रव्य ते

ज्ञान मिष्यते बोध । स्थिति रात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बन्धः ।। " तथा "योगात प्रदेश बन्धः स्थिति बन्धो भवति तू कषायात। दर्शन बोध चरित्रं, न योग रूपं कषाय रूपं च । " ॥ ४ ॥

आतम गुण अविराधना, भाव दया भंडार ॥ प्रभुजी ॥ क्षायिक गुण पर्यायमें, नवि पर धर्म प्रचार ॥ प्रभुजी ॥ वा० ॥५॥

अर्थ-ज्ञान दर्शन चारित्रादि अनंत आत्म गुणो ते भावप्राण छे अने ते भावप्राणनो विषय कषायादिके घात करवो ते भावहिंसा छे. अने ते भावप्राणनुं समिति गुप्ति आदि संवर वडे रक्षण करवुं घात न थाय एम अप्रमत्त भावमां वर्त्तवुं ते भावदया छे. ते भावदयाना आप भंडार-निधान छो. कारण के भावप्राणना घातक मिथ्यात्वादि दुष्ट हेतुउनो आपना आत्म प्रदेशमांथी सर्वदा नाश थयो छे, क्षायिक लब्धिने पाम्या छो. तेथी आपनी सत्ताभूमिमां मिथ्यात्वादि दोषोनो रंक

मात्र पण प्रवेश-प्रचार थई शके तेम नथी अने तेथी आपमां भावहिंसानो बिलकुल अभाव छे तेथी आप निर्विवाद पणे भावदयाना भंडार छो ॥ ५ ॥

गुण गुण परिणति परिणमे, बाधक भाव विहीन ॥ प्रभु० ॥ द्रव्य असंगी अन्यनो, शुद्ध अहिंक पीन ॥ प्रभुजी ॥ वा० ॥ ६ ॥

अर्थ-आपनो आत्म द्रव्य ज्ञान दर्शन चारित्र दान लाभ भोग उपभोगादि अनंत गुणनो पिंड छे (दव्वं गुण (समुदाओ) ते सर्व गुणो बाधकभाव रहित पोताना शुद्ध परिणामे परिणमे छे कारण के "सव्वे सपज्जवा गुणा, अपज्जवे जाणणा नत्थि" पण ते गुणो जो बाधकभावे एटले ज्ञान अज्ञानपणे, दर्शन अदर्शनपणे, चारित्र मिथ्याचरण रूप एम परिणमे तो आत्म स्वगुणनो रोध करे-शुभाशुभ कर्मबंध करे-आत्मीक सहज अबाधित सुखनी हाणी करे " (सायासायं दुःखं, तव्विरहंमि य सुहं जउत्तेणं । देहिंदियेसु दुःखं, सुक्खं देहिंदिया भावो) "

पण आपना सर्वे गुणो अबाधकभावे परिणमे छे तेथी आत्म अनंत गुणना आनंदना भोक्ता छे, ज्यांसुधी आत्मा बाधकभावे परिणमे त्यांसुधी अशुद्ध छे पण ज्यारे सर्वे परद्रव्यना राग-संग रहित वर्त्ते त्यारे शुद्ध छे, अहिंसक छे, कर्मबंधनो अकर्त्ता छे तथा पोताना अनंत आत्म वीर्य वडे पुष्ट छे. उक्तंच " परद्व्व रऊं वज्झइ; विरउं मुचेइ मठ कम्मेहिंएसो जिन उवएसो: समासउं बंध मोख्खस्स " ॥ ६ ॥

क्षेत्रे सर्व प्रदेशमें; नहिं परभाव प्रसंग ॥ प्रभुजी ॥ अतनु अयोगी भावथी; अव-गाहना अभंग ॥ प्र० ॥ वा० ॥ ७ ॥

अर्थ-जेम सोनुं खाणमां पथ्थर माटी विगेरे अनेक कुधातुउंथी मलेलुं होय छे पण ज्यारे योग्य युक्ति वडे तेने सर्वथा जूडुं पाडी गाली शुद्ध सोनुं करी लइए त्यार पछी ते सोनाने काट लागी शके नहि.

तेमज अनादिकालथी आत्म प्रदेशे लागेला ज्ञानावरणादि कर्मनो आपे शुक्लध्यान रूप अग्नि-

वडे सर्वथा नाश कर्यो छे, सर्व प्रदेशो शुद्ध निर्मल परम पवित्र थया छो तेथी आपना कोइ पण प्रदेशे परभाव-राग द्वेषादिनो· विषय कषायादिनो रंच मात्र पण संश्लेष नथी, थवानो संभव पण नथी.

ज्यांसुधी आत्मा औदारिकादि शरीरमां तेमज मन वचन काय योगमां ममत्व करी वसे छे तेथी ते चल पुद्गल योगे आत्म प्रदेश सकंप थाय छे पण ज्यारे सर्वथा तेनुं ममत्व त्याग करे त्यारे शुद्धात्म भावे अरूपी ज्ञायक स्वरूप प्रगटे. उक्तंच आचारांगे—से णंदीहे ण हस्से ण वट्टे ण तंसे ण चउरंसे ण परिमंडले ण किन्हे ण णीले ण लोहिए ण हालिद्दे ण सुकिल्ले ण सुरहिगंधे ण दुरहिगंधे ण तित्ते ण कडुए ण कसाये ण अंबिले ण महुरे ण कक्खडे ण मउए ण गुरुए ण लहुए ण सीए ण उण्हे ण णिध्धे ण लुक्खे ण काऊ णं रूहे ण संगे ण इत्थी ण पुरिसे ण अन्नहा परिणे सण्णे उवमा ण विज्जाए अरूवी सत्ता अपयस्स पयं णत्थि से ण सद्दे ण रूवे ण गंधे ण रसे ण फासे

इच्चेतावात तिबेमि " एम अतनु अयोगी आत्म अंग आत्म भावमां स्थिर थाय त्यारे कोइ पण आत्म प्रदेश रंच मात्र पण सचल थाय नहि. अभंग अवगाहनाने प्राप्त थाय. ॥ ७ ॥

उत्पाद व्यय ध्रुव पणे, सहेजे परिणति थाय ॥ प्रभुजी ॥ छेदन योजनता नहि, वस्तु स्वभाव समाय ॥ प्रभु० ॥ वा० ॥ ८ ॥

अर्थ–स्वभाव भावे परिणमवामां अन्य द्रव्यनी सहाय जोइति नथी. जेम अग्नि सहजे दाहकभावे परिणमे छे तेम सर्वे द्रव्यो उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सदाकाल होवाथी सहजे पोताना स्वभाव पर्याय-मां परिणमे. अन्य द्रव्यनी मदद जोइए नहि. उक्तंच :: दवियदि गच्छदि ताइं, सब्भाव पज्जयइंजं; दविय तं भणंते अणणभूदं तु सत्तादो " वस्तुने सहजे परिणमवामां कंइ पण दूर करवानी तथा कंइ पण संयोग करवानी आवश्यकता नथी कारण के द्रव्य तथा पर्यायनो अभेद भाव छे. जेम अग्निने दाहक परिणाम वगरनी तथा अग्नि वगर दाहक परिणामने आपणे

कदापी काले जोता नथी अर्थात् अग्निने ज्यारे जोइए त्यारे दाहक परिणाम सहितज होय छे तेम सर्व द्रव्य सदाकाल पोताना परिणामे वर्त्तताज होय छे. परिणाम वगर द्रव्य अभाव-शून्यपणाने पामे. उक्तंच-पज्जय विजुदं दव्वं दव्व विजुदाय पज्जयाणत्थि दोण्हं अणाणभूदं; भावं समणा परूविंति ॥ " वर्त्तमान पर्यायनो व्यय थाय अने नूतन पर्यायनो उत्पाद थाय तो पण द्रव्यार्थिक नये द्रव्य सदा ध्रुव छे. जेम सोनानुं कडु भांगी मुकुट बनावीए तेमां कडानो नाश अने मुकुटनो उत्पाद थता छतां पण सोनुं द्रव्य सदा ध्रुव छे. उक्तंच-" भावस्स णत्थिणासो, णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो । गुण पज्जयेसु भावा, उप्पाद वये पकुव्वंति । " ॥८॥

गुण पर्याय अनंतता, कारक परिणति तेम ॥ प्रभुजी ॥ निज निज परिणति परिणमे, भाव अहिंसक एम ॥ प्रभुजी ॥ वा० ॥९॥

अर्थ-ज्ञान ते सम्यक्ज्ञान रूप, दर्शन ते

सम्यक्‌दर्शन रूप, चारित्र ते स्वभावाचरण रूप एम ज्ञानानुयायी आपना अनंत गुणो पोताना शुद्ध परिणामे परिणमे छे कारण के आपनुं कारक चक्र ते शुद्ध अबाधक पणे सदा परिणमे छे (१) स्वधर्म कर्त्ता ते कर्त्तापणुं (२) स्वधर्म परिणाम ते कार्य (३) स्वधर्मानुयायी चेतना शक्ति ते करण (४) साध्य गुण शक्तिनुं प्रगटवुं ते संप्रदान (५) पूर्व पर्यायनुं निवर्त्तन ते अपादान (६) स्वगुणनो आधार आत्म सत्ताभूमि ते अधिकरण–एम गुण पर्यायनी तथा कारक परिणतिनी अनंतता छे तेथी कोइ पण आत्म धर्मने विराधक पणे रंच मात्र–समय मात्र पण परिणमता नथी तेथी आप सदा अहिंसक नामनुं सर्वोत्कृष्ट बिरुद धरावो छो ॥ ९ ॥

एम अहिंसकता मयी, दीठो तुं जिनराज ॥ प्र० ॥ रक्षक निज पर जीवोनो, तारण तरण जिहाज ॥ प्र० वा० ॥१०॥

अर्थः–एम स्वपर जीवना द्रव्य भाव प्राणनुं रक्षण करनार तथा अगाध कषाय रूप जलथी भरेला संसार समुद्रमांथी तारण तरण जहाज रूप हे जिनेश्वर ! हे करुणा निधान ! आ जगत् त्रयमां सर्वांगे दयामय में आपनेज जोया ॥१०॥

परमातम परमेसरु, भाव दया दातार ॥ प्रभुजी ॥ सेवो ध्यावो एहने, देवचंद्र सुखकार ॥ प्रभुजी० ॥ वा० ॥ ११ ॥

अर्थः-आत्मानो परमभाव जे ज्ञान तेनी शुद्धता तथा संपूर्णताने सर्व नये प्राप्त थयेला होवाथी परमात्मा. तथा अनंत अविनश्वर स्वाधीन परमानंद मय शुद्धात्म ऐश्वर्यताने प्राप्त थएला होवाथी परमेश्वर, अने भावदया रूप जे परमधर्म (आत्म गुण रक्षणा तेह धर्म, स्वगुण विध्वंसना ते अधर्म) तेना उपदेष्टा, दातार तथा भव भ्रमण जन्य शारीरिक तथा मानसिक दुःखनो अत्यंत अंत करी सहज परमोत्कृष्ट आत्मीक सुखना दातार त्रिलोक पूज्य श्री बाहुजिनेश्वरने सेवो, ध्यावो, तेमना गुणनुं ध्यान करो, तेथी एकाग्र चित्त करो, एम श्री देवचंद्र मुनि मित्र भावना वडे भव्य जीवो प्रति हित शिक्षा आपे छे ॥ ११ ॥

(संपूर्ण)

॥ अथ चतुर्थ श्री सुबाहुजिन स्तवनं ॥

॥ माहरो व्हालो ब्रह्मचारी ॥ ए देशी ॥

श्री सुबाहुजिन अंतर जामी, मुज मननो विशरामी रे ॥ प्रभु० ॥ आतम धर्म तणो आरामी, पर परिणति निःकामी रे ॥ प्रभु अंतरजामी ॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थः-शुद्ध अने तिक्ष्ण उपयोगमां परम स्थिरता एकाग्रता धारण करी राग द्वेष रूप महान् शत्रुउंने जीतेला हे श्री सुबाहु स्वामी! केवलज्ञान दर्शन उपयोग वडे मारा तेमज सर्वे द्रव्योना अंतर्गत भावने इंद्रियादिकनी सहाय विना प्रत्यक्ष जाणवा देखवावाला तथा सर्वदा परम संवरमां लीन होवाथी अंतर्यामी छो.

स्त्री पुत्र मित्रादि परिजनो तथा धन धान्य हिरण्य क्षेत्रादि परद्रव्यना मनोज्ञ पर्यायोने आप सुख हेतु जाणता नथी परंतु तेउंने जलना बुद्बुद्-वत् तथा बिजलीना चमत्कारवत् क्षणीक, पराधीन अतृप्तिना हेतु, तथा आत्म धर्म रोधक राग द्वेषना निमित्त, संसार परिभ्रमणना निमित्त साक्षात् पणे जाणो छो माटे ते विषयोनो आपने कामना केम थाय? कदापि न थाय; तेथी आप सदा निःकामी

छो. जे मुग्द प्राणीउं ते विषयोने सुख हेतु जाणे तेउंने तेनी कामना थाय अने तेज तेनी चाहरूप दाहमां प्रवेश करी पोताना आत्म भोगने दग्ध करे पण आप तो केवल सम्यक्ज्ञानी होवाथी शुभाशुभ–शाता अशाता वनेना उदयने आत्मगुणना रोधक होवाथी दुःख रूपज जुउंछो तेथी आपने तेनी कामनानो बिलकुल संभव नथी, निरंतर निष्कामी छो. तथा शुद्धात्म ज्ञान दर्शन चारित्र गुणने स्वाधीन अविनश्वर तथा परमानंदना हेतु जाणी निरंतर तेमांज रमण करवावाला तथा तेनाज भोगमां परम संतुष्ट छो. एवी आपनी परमोत्कृष्ट अवस्था जोइ ते पद साधवानी मने रूची थइ तथा ते पद साधवानो समीचीन मार्ग पण आपे बताव्यो तेथो खरेखर मारा मनने परम विश्रामना हेतु आपजछो. ॥ १ ॥

केवलज्ञान अनंत प्रकाशी, भविजन कमल विकाशी रे ॥ प्र० ॥ चितानंदघन तत्त्व बिलासी, शुद्ध स्वरूप निवासी रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ २ ॥

अर्थ--अनंत केवलज्ञान रूप सूर्यनो प्रकाश करी भव्य जीवोना हृदयकमलने विकश्वर करनार ज्ञानानंदना समूह आत्म तत्त्वमां विलास करनार तथा तेज शुद्ध स्वरूपमां निवास करनार छो.

अनादि कालथी ज्ञानावरणादि कर्मवडे आच्छादित थयेला अनंत केवलज्ञान रूप जलहलाटमान अद्वितीय सूर्यने, कर्म पडलनो नाश करी संपूर्णपणे प्रकाशमान करी अज्ञानरूप अंधकार वडे आवृत थएला भव्य जीवोना हृदयकमलने ज्ञानकिरणो वडे परम प्रफुल्लित करनार छो. रूप रस गंध स्पर्शादि परद्रव्यना पर्यायनो भोग, रमण, आस्वाद, मूर्छा, कामना विगेरेनो समूल नाश करी राग द्वेषादि विभावनो परिहार करी पोताना सहज अविनश्वर ज्ञानसमूह आत्म तत्त्वमां विलास करनार अर्थात् तेना भोगमां निमग्न छो. तेज शुद्धात्म स्वरूपमां सदा निवास करो छो अर्थात् आपनो उपयोग त्यांथी समय मात्र पण चलतो नथी—परद्रव्यादि तरफ जतो नथी ॥ २ ॥

यद्यपि हुं मोहादिके छलियो, पर परिणतिशुं भलियो रे ॥ प्र० ॥ हवे तुज सम मुज

साहिब मलियो, तिणे सवि भवभय टलियो रे ॥ प्रभु अंतरजामी ॥ ३ ॥

अर्थ--जो के हुं मोहादि वडे ठगायो, परपरिणतिमां तल्लीन थइ रह्यो, पण हवे तमारा जेवा साहेबनी वाणी सांभली मने प्रतित थवाथी मारो सर्वे भवभय दूर थयो. जो के मोह अज्ञान मिथ्यात्वादि दुष्टोए मने वश करी मारी ज्ञानादि संपदा ठगी लीधी छे, माहरा सहज अनुपम सुख भोगथी मने वियोगी कर्यो छे, तेथी हुं ते दुष्टोना वशमां पडी अत्यंत कंगाल अवस्थाने भोगवुं छु.

परपर्याय--शरीर स्वजन परिजन तथा धन धान्यादिमां अहं ममत्त्व करी तेनेज सुख तथा सुख हेतु जाणी तेनीज इच्छा कामना करी जेम लींबडामां वसतो कीडो लीमडाना रसनेज मधुर मानी तेमां तल्लीन रहे छे, त्यांथी निकलवा चाहातो नथी, तेम हुं तेमां तल्लीन थई रह्यो, तेथी विरत थयो नहि, पण हवे हे करुणानिधे! सर्वज्ञ अने वीतराग आप जेवा समर्थ स्वामीनी मने प्राप्ति थई--आपनुं दर्शन पाम्यो तेथी अनंत रोग शोक भय क्रोध मान माया लोभ अरति आदि के भरेला भव समुद्रमां भ्रमण करवानो भय दूर थयो. कारण

के ते भव भ्रमणनी हवे अवधि आवी. उक्तंच-
"अंतो मुहुत्त मित्तंपि फासिअं हुझ जेहिं सम्मत्तं, तेसिं अवड्ढ पुग्गल; परिअट्टो चेव संसारो" ॥ ३ ॥

ध्येय स्वभावे प्रभु अवधारी; दुर्ध्याता परिणति वारी रे ॥ प्र० ॥ आसन वीर्य एकता कारी; ध्यान सहज संभारी रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ ४ ॥

ध्याता ध्येय समाधि अभेदे; पर परिणति विछेदे रे ॥ प्र० ॥ ध्याता साधक भाव उछेदे, ध्येय सिद्धता वेदे रे ॥ प्र ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थः-प्रभुपदने पोतानुं शुद्ध ध्येय जाणी पोताना हृदयमां स्थापना करी, दुर्ध्यान रूप परिणतिने निवारी, पोताना ज्ञान वीर्यनी संपूर्ण एकता अभेदता करनारूं सहज आत्म ध्यान संभारे; तेथी पर परिणतिनो समूल विच्छेद थाय, त्यारे ध्याता ध्येय समाधिमां तल्लीन थाय अने ध्येय पदनी सिद्धि प्राप्तिने वेदे-भोगवे त्यारे ध्यातापणांनो

साधकपद दूर थाय.

ज्ञानावरणादि सकल कर्मना संबंधथी सर्वथा मुक्त केवलज्ञान दर्शन चारित्र वीर्यमय सहज आत्म गुणना समूह रूप श्री सुबाहु स्वामीना परमात्म पदने शुद्ध ध्येय (ध्याववा लायक वस्तु) धारी--ज्ञान पूर्वक निश्चय करी, जन्म जरा मरण रूप संसार भ्रमणना हेतु भूत, शुद्ध परिणतिथी विमुख आर्त्त रौद्र परिणाम वारे--दूर करे, (कारण के ज्यांसुधी दुर्ध्यान परिणाम वर्त्ते त्यांसुधी शुद्ध ध्यानने अवकाश मले नहि जेम मलीन वस्त्र ऊपर केशरनो रंग लागे नहि) अने पर परिणामानुगत थयेला पोताना आत्म वीर्यने समेटी मात्र शुद्ध ज्ञान दर्शन चारित्र परिणाममां आत्म वीर्यने एकत्र तल्लीन करे--अभेद करे एवुं सहज आत्म ध्यान आदरे, जेथी ध्येय समाधि अर्थात् शुद्धात्म अनुभव रूप निर्विकल्प निराकुल निरूपचरित स्वतंत्र परम समाधिमां मग्न-तल्लीन थाय; ते वारे आत्म परिणति मनोज्ञ अमनोज्ञ कोइ पण पर द्रव्यमां राग द्वेष रूप अशुद्ध परिणामे वर्त्ते (गमन करे) नहि, ते वारे ध्येय पदनी अर्थात् शुद्ध परमात्म पदनी सिद्धि थाय. तेना अचल अनंत भोग

उपभोगनो स्वामी थाय. उक्तंच—एको मोक्ष पथो.

य एष नियतो, दृग्ज्ञप्ति वृत्यात्मक; स्तत्रैव स्थिति मेति यस्तमनिशं, ध्यायेच्चतं चेतसि, तस्मिन्नैव निरंतरं विहरति द्रव्यान्तराण्य स्पृशन् । सोवश्यं समयस्य सार मचिरान्नित्यो- दयं विन्दति ।

अर्थः—सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक मोक्ष मार्गमां जे पुरुष स्थित थाय छे, तेनेज जे निरंतर ध्यावे छे वली तेनेज जाणे, छे तेनेज अनुभवे छे वली तेनाज विषे विहार करे छे—प्रवर्त्ते छे पण अन्य द्रव्यमां रंच मात्र स्पर्श करतो नथी ते अल्प कालमां नित्योदय परमात्म पदने पामे छे त्यारे ध्यातामांथी साधक भावनो उच्छेद थाय छे; कारण के ध्येयनी संपूर्ण सिद्धि थया पछी साधवानुं कंइ बाकी रहेतुं नथी. ज्यांसुधी कंइ साधवानुं बाकी होय त्यांसुधी साधक भाव कहेवाय जेम (कारण पद उत्पन्न, कार्य थये न ऊछोरी). ॥४॥ ॥५॥

द्रव्य क्रिया साधन विधि याची, जे जिन आगम वाची रे ॥ प्र० ॥ परिणति वृत्ति विभावे

राची, तिण नावि थाये साची रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थः-शुद्ध ध्येय जे परमात्म-मोक्ष पद तेनुं यथार्थ स्वरूप श्रद्धान पूर्वक में न जाण्युं तथा साध्य सापेक्ष आचरणा न आदरी त्यांसुधी माहरी चित्त वृत्ति विभावमां राची रही अर्थात् आ लोक संबंधी पंच इंद्रियोना मनोज्ञ भोग्य पदार्थो तथा परलोक संबंधी स्वर्गादिना भोगमां आशक्त रही-तेनी मनोकामना रही तेथी आपना सत्य प्रमाणिक आगममां बतावेली समिति गुप्ति परिषह सहन तथा चारित्र तप नियमादि परमात्म पदनी साधन भूत द्रव्य क्रियाउं पण विष गरल अने अन्योन्य अनुष्टान रूप होवाथी परमार्थ-मोक्ष पदने आपवा समर्थ थई नहि. ज्यांसुधी सम्यग्ज्ञाननी प्राप्ति थई नथी त्यांसुधी सर्व क्रियाउं शुद्ध भाव विनानी अशुद्ध विष गरल अन्योन्य अनुष्टान रूप जाणवी उक्तंच " शुद्ध क्रिया तो संपजे, पुद्गल आवर्त्तने अद्ध रे " ॥ ६ ॥

पण भय नहि जिनराज पसाये, तत्त्व रसायण पाये रे ॥ प्र० ॥ प्रभु भगतें निज

चित्त वसाये, भाव रोग मिट जाये रे ॥ प्रभु० ॥ श्री० ॥ ७ ॥

अर्थः– पण हवे मने भय नथी कारण के जिनराजना वचन पसाये तत्त्व रसायणनी प्राप्ति थई छे तेथी माहरूं चित्त प्रभुनी भक्तिमां वसवाथी भाव रोग मटी जशे. पण हवे हे तरण तारण श्री सुबाहु जिनेश्वर! बत्रीश दोष रहित तथा वाणीना पांत्रीश गुण सहित परमामृत रूप आपना वचनोना पसाये ज्ञानावरणादि कर्म रोगने अत्यंत दूर करी आत्म वीर्यनी संपूर्ण वृद्धि पुष्टि करनार देवतत्त्व, गुरू तत्त्व, अने धर्मतत्त्वनी मने प्राप्ति थई छे तेथी माहरी चित्त वृत्ति मनोज्ञ अमनोज्ञ पर द्रव्यथी निवृत्त थई प्रभुनी आज्ञा पालवा रूप भक्तिमां लीन थशे तेथी माहरा ज्ञानावरणादि सर्वे भाव रोगो सूर्यथी जेम अंधकार नष्ट थाय तेम तत्काल विना-प्रयासे नष्ट थई जशे. एवा निश्चयथी मारो भव भ्रमणनो अत्यंत भय दूर थयो छे ॥ ७ ॥

जिनवर वचन अमृत अनुसरिये, तत्त्व रमण आदरिये रे ॥ प्र० ॥ द्रव्य भाव

आस्रव परिहरिये, देवचंद्र पद वरिये रे ।
श्री० ॥ ८ ॥

अर्थः-जिनेश्वरना अमृत समान वचन सारे वर्त्तीए, तत्त्व रमणना ग्राहक थईए, द्रव्य तथा भावास्रवनो त्याग करीए तो देवमां चं समान सिद्ध पद वरिये-

हे सुबाहु जिनेश्वर ! आप सर्वज्ञ अने वीर होवाथी साचा आप्त छो. आपनांज वचन चा गति रूप अत्यंत भयंकर पारावार भव समु पार उतारी शिव स्थानके पहोंचाडवाने अद्वि नौका समान छे तथा दुष्ट ज्ञानावरणादि कर्म वडे पीडाता दुर्बल आत्म वीर्यथी हीण थएल ते रोग दूर करी आत्म वीर्य संपूर्ण पुष्ट करव अमृत समान छे. माटे जो आपना वचनने, १ अनुसरीये-ते प्रमाणे वर्त्तीए अने शुद्धात्म तत्त्व रमण करीए-तेमां लीन थईए तथा अभिनिवेशा पांच मिथ्यात्व, हिंसादि पांच अव्रत, तथा क्रोध दिक कषाय, विकथादि प्रमाद तथा औदारिक का- योग आदि योगनो परिहार करीए-राग द्वेषा विभावनो त्याग करीए तो नवां कर्म आवतां बं थाय अने पूर्व संचित कर्मनी निर्जरा थाय तेथ

देवमां चंद्रमा समान परमात्म पदनी प्राप्ति थाय अतींद्रिय अव्याबाध अनंत सुखनी प्राप्ति थाय उक्तंच " पंचासव्व विरत्ता, विषय विजुत्ता समाहि संपत्ता, राग दोष विमुत्ता, मुणिणो साहंति परमच्छ " ॥ ८ ॥

(संपूर्ण)

॥ अथ पंचम श्री सुजात स्वामी जिन स्तवन ॥

देहुं देहुं नणद हठीली ॥ ए देशी ॥

स्वामी सुजात सुहाया, दीठा आणंद उपाया रे, मन मोहना जिनराया । जिणे पूरण तत्त्व-निपाया, द्रव्यास्तिक नय ठहराया रे, मन मोहना जिनराया ॥ स्वामी० ॥ १ ॥

पर्यायास्तिक नय राया, ते मूल स्वभाव समाया रे, मन मोहना जिनराया। ज्ञानादिक स्व परजाया, निज कार्य करण वरतायारे, मन मोहना जिनराया ॥ स्वामी० ॥ २ ॥

अर्थः-हे सुजात स्वामी ! सर्वे स्वपर्यायनुं कारण द्रव्य छे पण द्रव्यनुं कारण अन्य द्रव्य होइ शके नहि तेथी आप स्वयं सिद्ध छो. स्वयं बुद्ध छो, सर्व पर द्रव्यनी कामनाथी रहित परम संतुष्ट छो, तथा अतींद्रिय अव्याबाध, अनुपम, निरूपचरित, स्वाधीन, अपृथग्भूत, अनंत, सहज, आत्म सुखना निरंतर भोक्ता, अनुभव लेनार छो, सुखात्मा छो, उक्तंच ": जादो सयं स चेदा, सवण्हू सव्व भोग दरसीय । पप्पोदि सुहमणंतं, अव्वाबाहं सगम मुत्तं " ॥ माहरा चित्तने सुहंकर लाग्या छो, अनंत गुणना निधान आप स्वजातिनुं दर्शन थतां अपूर्व आनंद रूप जल वडे माहरूं चित्त सरोवर भरपूर थयुं, अज्ञान कषायना पात्र पर द्रव्यादिनी चाह दाहमां निरंतर प्रज्वलित थतां शुद्धात्म अनुभव रूप सुगंधथी रहित हरिहरादि कुदेवोने करीरादि वृक्षोनी पेठे त्यागी शुद्धात्म अनुभव रूप अनंत सुगंधथी भरपूर आपना पद कमलमां माहरूं मन मोहित थयुं छे, त्यांथी रंच मात्र पण खसवा चाहातुं नथी; माटे हे जिनेश्वर ! जगत् त्रयमां आपज भव्य जीवोना मन मोहन छो. जे आपे अनादि कालथी लागेला आत्म गुण रोधक ज्ञाना-

वरणादि कर्म मलने बाह्य अभ्यंतर तप वडे दूर करी पोताना आत्म तत्त्वनी एवंभूत नये सिद्धि करी छे अर्थात् सर्व आत्म गुणो संपूर्ण निर्मल तथा स्वाधीन करी लीधा छे माटे हवे कंई पण करवानुं आपने बाकी रह्युं नथी तेथी आप निष्क्रिय बिरूदने संपूर्ण प्राप्त थया छो, अनंतानंदना स्वामी थया छो तथा आत्म धर्मने मलिन करवाना तथा भव भ्रमणना निमित्त अज्ञान मिथ्यात्व कषाय अने योगनो सर्वथा अभाव कर्यो छे तेथी आपनो कोइ पण गुण पर्याय हवे कोइ पण काले रंचमात्र पण मलिन थवानो नथी तथा तेमज ते सिद्धि अवस्थाथी आप कोइ पण काले च्यूत थवाना नथी. द्रव्यास्तिक नये आप सदा अवस्थित रही चेतनतामां समाता पोताना शुद्ध अनंत पर्यायनुं राज्य भोगवो छो. ज्ञानादिक सर्व पर्यायोने स्वकार्य करवामां निरंतर प्रवर्त्तावो छो अर्थात् ज्ञान गुण वडे अनंत द्रव्यना त्रिकालवर्त्ती अनंत गुण पर्यायने समकाले प्रत्यक्ष पणे जाणो छो, दर्शन गुण वडे सर्व द्रव्यना अस्तित्वादि सामान्य स्वभावने समकाले देखो छो, चारित्र गुण वडे सर्व परभावथी निवृत्त पणे अनंत ज्ञानादिक स्वधर्ममां निरंतर रमण करो छो अने आपनुं आत्म

वीर्य ते पण ज्ञानादिक अनंत स्वधर्म परिणमाववामां वर्ते छे. एम आपना सर्व पर्यायो पोत पोतानुं कार्य करवामां स्वाधीन पणे वर्त्तावो छो वली हे सर्व नीतिमानमां शिरोमणि ! द्रव्यना यथार्थ स्वरूपनो बोध थवा माटे आपे द्रव्यास्तिक अने पर्यायास्तिक ए बे मूख्य नयो ठराव्या छे. जेमां सर्व नयनो समावेश थई जाय छे ते नयना यथार्थ ज्ञानवडे वस्तुनुं स्वरूप यथार्थ साक्षात् वत् जणाय छे–भासे छे ॥१॥

अंश नयमार्ग कहाया, ते विकलप भाव सुणायारे ॥ मन० ॥ नय चार ते द्रव्य थपाया, शब्दादिक भाव कहायारे ॥ मन० ॥ २ ॥

अर्थ–नय ते पदार्थना ज्ञानने विषे ज्ञानना अंश छे, वस्तु अनंत धर्मात्मक छे अर्थात् जीवादिक दरेक पदार्थमां अनंता धर्म छे. तेमांथी जे स्वाभिष्ट एक धर्मने मुख्यताए गवेषे छे तेमां रहेला बीजा धर्म, प्रति उदासिनता राखे छे ते नय छे उक्तंच–स्याद्वाद मंजरीमां "नीयते परिच्छिद्यते एक देश विशिष्टोर्थ आभिरिति नीतयो नयाः तथा रत्नाकरे, नीयते येन श्रुताख्या प्रमाण विषयी कृतस्यार्थ स्यांशस्तदितरांशौदासीन्यतः स प्रतिपत्तु रभिप्राय

विशेषो नयः" एम दरेक नयो वस्तुना स्वाभिष्ट एक अंशने प्रतिपादन करे छे तेथी ते विकल्प मार्ग छे. जे एकांते पोताना अभिष्ट धर्मनेज स्थापन करे छे नेमां रहेला बीजा धर्मोने तिरस्कारे छे. ओलवे छे, अपेक्षा राखतो नथी ते दुर्नय अथवा नयाभास छे. स्वाभिप्रेतादंशा दितरांशा पलापी पुनर्नयाभास :" अने जे वस्तुमां रहेला कोइ पण धर्मने तिरस्कारतो नथी अर्थात् तेनी अपेक्षा राखे छे एम बतावबाने स्यात्-पद युक्त अभिष्ट धर्मनुं प्रतिपादन करे छे ते सुनय छे, स्याद्वाद छे, प्रमाण वाक्य छे, तेज हे जिनेश्वर ! आपना परम आगमनुं बीज [जीवन] छे, जे सर्व एकांत वादे मचेला उन्मत्त हाथी उना मदने भंजन करवाने सिंह समान छे, वस्तुनुं यथार्थ सर्वांगे स्वरूप जाणवा दिव्य ज्ञानदृष्टि छे, उक्तंच-स्याद्वादमंजरी-राग-उपेंद्रवज्रा ॥ ' सदेव सत्स्यात् सदिति त्रिधार्थो, मीयेत दुर्नीति नय प्रमाणैः यथार्थ दर्शीतु नयप्रमाण, पथेन दुर्नीति पथं त्वमास्थः अर्थ-सत्यज छे, सत् छे अने स्यात् सत् छे एवी रीतनो त्रण प्रकारनो अर्थ अनुक्रमे दुर्नय, नय अने प्रमाण वडे मापी शकाय छे अने यथास्थित पदार्थ

ने जोनारा एहवा हे प्रभु ! आपेज नय अने प्रमाणना मार्ग वडे दुर्नय मार्गने दूर कर्यो छे ते नयना विस्तारथी अनेक भेद छे (व्यासतो नेक विकल्पः) कारण के वस्तु अनंत धर्मात्मक छे अने ते अनंत धर्मेनुं निरूपण करवाने वचन मार्ग पण अनंत होय माटे जेटलां वचन तेटला सर्वे नयवाद कहेवाय "जावइया वयण पहा, तावइया चेव हुन्ति नयवाया" तो पण ते सर्वे नयवादोनो संग्रह करनारा एहवा सात अभिप्रायनी कल्पनाना द्वारे करीने सात नयो प्रतिपादन करेला छे तेनां नामनैगम, संग्रह, व्यवहार, रूजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ अने एवंभूत. तेमांथी प्रथमना चार नयो द्रव्यार्थीक नयमां अने शब्दादि त्रण नयोने पर्यावार्थिकमां समाय छे ते त्रण भावनय छे.

समासतो द्विभेदः द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकः तत्र द्रव्यार्थिक श्चतुर्धा नैगम, संग्रह, व्यवहार, रूजुसूत्र भेदात् पर्यायार्थिकस्त्रिधा शब्द समभिरूढ एवंभूत भेदात्"

श्री सिद्धसेन दिवाकर रूजुसूत्रनयने पर्यायार्थिकमां

गणे छे माटे तेमना अभिप्राये नैगमादि त्रण नय द्रव्यार्थिक अने रुजुसूत्रादि चार नय पर्यायार्थिक छे. द्रव्यने सामान्यपणे निरूपण करनारा प्रमाताना अभिप्रायो जेओनो आद्यना चार नयमां समावेश थाय छे ते द्रव्यार्थिक छे अने जे अभिप्रायो शब्दना अर्थनी मूख्यता धरावे छे ते शब्दादिक त्रण नय पर्यायार्थिक छे माटे आदिना चार नय ते अविशुद्ध छे अने शब्दादिक त्रण नय ते विशुद्ध छे उक्तंच-

आद्य नय चतुष्टय माविशुद्ध पदार्थ प्ररूपणा प्रवणत्वात् अर्थ नया नाम द्रव्यत्व सामान्य रूपा नयाः शब्दाद्यो विशुद्ध नयाः शब्दावलंवार्थ मूख्यत्वात्

तथा च स्याद्वादमंजरी ये केचनार्थं, निरूपण प्रवणाः प्रनात्र भिप्रायास्ते सर्वेऽप्याद्यनय चतुष्टयेऽन्तर्भवति ये च शब्दविचार चतुरास्ते शब्दादि नय त्रय इति ॥

द्रव्यं तदेवार्थः, सोऽस्ति यस्य विषयत्वेन स द्रव्यार्थिकः ”

“ पर्येति उत्पाद विनाशौ प्राप्नोतीति पर्यायः स एवार्थः स अस्ति यस्यासौ पर्याया-र्थिकः ” ॥ ३ ॥

दुर्नय ते सुनय चलाया, एकत्त्व अभेदे ध्यायारे ॥ मन० ॥ ते साव परमार्थ समाया, तसु वर्त्तन भेद गमायारे ॥ मन० ॥ ४ ॥

अर्थः–सुनयनुं लक्षण कहे छे. “ स्वार्थ ग्राही इतरांशाप्रतिक्षेपी सुनय इति सुनय लक्षणं” कुनयनुं लक्षण कहे छे. “ स्वार्थ ग्राही इतरांश-प्रतिक्षेपी दुर्नय इति दुर्नय लक्षणं” अर्थः–स्वा-भिष्ट धर्मने गवेषतां बीजा धर्मोनो अपेक्षा नहि राखनार बीजा धर्मोने ओलवनार जे दुर्नयो तेने दूर करी स्वाभिष्ट धर्मथी इतर सर्वे धर्मोनी अपेक्षा राखी स्यात्पदे शोभता सुनय–अनेकांत वादनी प्रवृत्ति करी ते अनेकांत–स्याद्वादनये वस्तुनुं

अभेद अर्थात् कोई काले जूदा नहि पडे एम चित्तमां चिंतन करी धारणा करी ते सर्व नयोने परमार्थ एटले शुद्ध द्रव्यस्वरूपमां समाव्या, तज्जन्य एक शुद्धात्म अनुभूतिने भोगववा लाग्या, नयोनी वर्त्तना रूप विकल्पनो नाश थयो उक्तंच-उपेंद्रवज्रा.

य एव मुक्त्वा नय पक्षपातं, स्वरूप गुप्ता निवसन्ति नित्यं विकल्पजाल च्युत शांन्त-चित्ता, स्तएव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥ ४ ॥

स्याद्वादी वस्तु कहीजे, तसुधर्म अनंत लहीजे रे ॥ मन० ॥ सामान्य विशेषनुं धाम, ते द्रव्यास्तिक परिणाम रे ॥ मन० ।५।

अर्थः–वस्तु अनंत धर्मात्मक छे अर्थात् अनंता धर्मो वस्तुमां समकाले होय छे. जेम स्वद्रव्यादि चतुष्टये वस्तु अस्ति स्वभाववंत छे. पर द्रव्यादि चतुष्टये वस्तु नास्ति स्वभाववंत छे. तेमज नित्य अनित्य, एक, अनेक, भेद, अभेद, भव्य, अभव्य, वक्तव्य अवक्तव्य, विगेरे स्वभाववंत वस्तु होय छे माटे जो तेमांथी स्वाभिष्ट एक स्वभावने एकांते गवेषीये, निश्चय करीये तो वस्तुनुं ज्ञान यथार्थ थाय नहीं पण जो स्यात् अस्ति, स्यात् नित्य, स्यात्

एक विगेरे अनेकांते गवेषीये तो या
बीजा धर्मोनी पण सूचना थाय एम
स्याद्वाद अनंत धर्मात्मक छे तेथी स्या
वस्तुमां रहेला अनंत धर्मनो बोध थाय.

वली अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगु
प्रमेयत्व, सत्व, ए व मूल सामान्य तथा
स्वभाव, नास्तिस्वभाव नित्यस्वभाव,
स्वभाव, एकस्वभाव, अनेकस्वभाव, भेदस्
अभेदस्वभाव भव्यस्वभाव, अभव्यस्वभाव,
व्यस्वभाव, अवक्तव्यस्वभाव, परमस्वभाव
उत्तरसामान्य स्वभाव वस्तुमां अनंता छे
जीवमां चेतनता अनुयायी अनेक विशेष स्व
छे तेम धर्मास्तिकायमां गति सहायादि,
अधर्मास्तिकायमां स्थितिसहाय आदि तथा
काशमां अवगाहदान आदि तथा पुद्गलमां पू
गलनादि अनंत धर्मो छे ते अनंत सामान्य स्वभ
तथा विशेष स्वभावनो आधारभूत जे अस्तित
धर्म ते सर्व द्रव्यमां सदाय समकाले परिणमे
उक्तंच. " नित्यत्वादीनां उत्तर सामान्यान
परिणामिकत्वादीनां विशेष स्वभावानामाधार

भूत धर्मत्वं अस्तित्वं " विगेरे ॥ ५ ॥

जिनरूप अनंत गणीजे, ते दिव्यज्ञान जाणीजे रे ॥ मन० ॥ श्रुत ज्ञाने नय पथ लीजे, अनुभव आस्वादन कीजे रे । मन० ॥५॥

अर्थः-जिनेश्वर निर्मल ज्ञानानुयायी अनंत रमणीय गुणना समूह अनंत धर्म विराजमान छे अप्रतिहत् महान तेजस्वी अखंड एक ज्ञान मूर्त्ति छे. इंद्रिय विषयथी अतीत छे, ज्ञानस्वरूपी ज्ञानगम्य छे, तेथी तेओने रागद्वेष रूप मलीमताथी रहित मात्र शुद्ध दिव्यज्ञानवडे जाणी शकीये माटे जिनेश्वर ते अनंत गुणात्मक अर्थात् जिनेश्वरना अनंत गुणोने शुद्ध नये जाणवुं तेज सुंदर अनुपमज्ञान छे ते माटे अनंत गुणात्मक जिनेश्वरने सम्यक्प्रकारे जाणवा माटे भवसमुद्रमां नौका समान सर्वज्ञ वीतराग प्ररूपित श्रुतज्ञानना प्रसादथी सुनय-स्याद्‌वाद मार्ग ग्रहण करीए. अने शुद्ध नये जाणी तत्स्वरूपना अनुभवनो आनंद पामीए-भोगवीए. उक्तंच-राग वसंततिलका वृत्तम्-

" नैकान्त संगत दृशा स्वयमेव वस्तु, तत्व

व्यवस्थितिमिति प्रायलोक यन्तः ।। याद्‌-वाद् शुद्धि मधिका मधिगन्य सन्तो, ज्ञानी भवन्ति जिन नीति मलन्घयन्तः ” भावार्थ-सर्व वस्तु सहज अनेकांतात्मक छे माटे जिनेश्वरना स्याद्वाद् न्यायने नहि उलंघन करतां वस्तु तत्त्वनी अनेकांतात्मक व्यवस्था सन्मुख दृष्टि राखी स्या-द्वादनि अधिक शुद्धिने अंगीकार करी सत्पुरुषो ज्ञानी बने छे-ज्ञानपद धारण करे छे. ।। ५ ।।

प्रभु शक्ति व्यक्ति एक भाव, गुण सर्वरह्या समभावेरे ।। मन० ।। माहरे सत्ता प्रभु सरखी, जिन वचन पसाये परखीरे ।। मन० ।। ७ ।।

अर्थः-हे त्रिलोकपूज्य प्रभु ! आपनी ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि सर्व शक्तिउं व्यक्त अर्थात् निरावरण थई छे, अबाधित पणे पोताना शुद्ध कार्ये परिणमें छे, आगामी अनंतकाल सुधी एमज परिणमवाने शक्तिमान छे, कोइ पण काले क्षीणता पामे तेम नथी कारण के द्रव्यमां सामर्थ्य पर्याय तथा छती पर्याय अनंत छे माटे आपनी

धारी छुं. जो आपनी आज्ञाने मस्तके चढावी तदनुसार सम्यकपराक्रम चजावी सम्यकदर्शन ज्ञान चारित्रने आदरूं-सेवुं तो आप सदृश परमानंद भोगने निःसंदेह प्राप्त थाउं. उक्तंच- "तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग् दर्शनं, यथार्थ हेयोपादेय परीक्षा युक्त ज्ञानेन सम्यग्ज्ञानं, स्वरूप रमणं पर परित्याग रूपं चारित्रं येतद्रत्नत्रयी रूप मोक्ष मार्ग साधनात् साध्य सिद्धिः" एम में आपना न्याय युक्त अबाध्य वचनना प्रसादे परीक्षा पूर्वक माहरी सत्तानो निर्धार कर्यो छे ॥७॥

तुं तो निज संपत्तिनो भोगी, हुं तो पर परिणातिनो योगी रे ॥ मन० ॥ तिण तुम प्रभु माहरा स्वामी, हुं सेवक तुज गुण ग्रामी रे ॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थः-हुं अनादिथी कर्म शत्रुनी जेलमां पडेलो होवाथी अनंत काल सुधी माहरी ज्ञानादि अखूट लक्ष्मीनुं मने दर्शन पण न मल्युं तेथी जड चल जगत् जीवनी एंव, जलना परपोटा जेवी क्षणभंगुर, पराधीन, चाहदाहथी बालनार, माहराथी

दूरवर्त्ती थई अनेक प्रकारना शोक दुःख उपजावनार, तेना काल प्रमाणे वर्त्तनार, सदा अतृप्त राखनार, जेनो भोग किंपाकफलनी पेठे प्राण घातक, एवी जे पुद्गल परिणति (पौद्गलीक विषयो) तेमां हुं भोग सुख मानी मग्न, तल्लीन थई रह्यो, माहरी कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व ग्राहकत्व, व्यापकत्व, दान लाभ, भोग, उपभोग आदि परिणतिने तद्गत करी संसार परिपाटीने वधारी उक्तंच– "जो

अपसत्थोरागो, वड्डइ संसार भमण परिवाडी ।
विसयाइसु सयणाइसु, इट्टत्तं पुग्गलाइसु ॥"

माहरी अनुपम अखूट ज्ञानादिक संपदाथी वियोगी रह्यो पण हे भगवंत ! आप तो आत्म संपदाना भोगमां अंतराय करनार कर्मशत्रुनो सम्यक्चारित्र वडे समूल नाश करी अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य अनंतदान, अनंतलाभ, अनंतभोग अनंतउपभोग आदि स्वसंपदानो लाभ मेलवी स्वाधीन करी निरंतर निष्कंटक पणे ज्ञानादि अनंत अचल निरुपचरित अनुत्तर आत्म संपदाना भोगमां अत्यंत मग्न थया छो तेथी हे प्रभु ! आपनेज माहरा स्वामी जाणुं छुं, आपथीज माहरो मनोर्थ परिपूर्ण थशे. आपनाज दर्शनथी मारी

अद्भूत लक्ष्मी माहराउपर प्रसन्न थई माहरे स्वाधीन थशे माटे हुं आपनी सेवाने निरंतर चाहनार आपनो सेवक आपनाज गुण ग्राममां संतोष वृत्ति धारण करुं छुं ॥ ८ ॥

प्र संबंधे चित्त समवाय, मुज सिद्धिनुं कारण थाय रे ॥ मन० ॥ जिनराजनी सेवना करवी, ध्येय ध्यान धारणा धरवी रे ॥ मन० ॥९॥

तुं पूरण ब्रह्म अरुपी, तुं ज्ञानानंद स्वरूपी रे ॥ मन० ॥ इम तत्त्वालंबन करिये, तो देवचंद्र पद वरिये रे ॥ मन० ॥ १० ॥

अर्थः–आपनी सेवामां जो माहरुं चित्त एकाग्र थाय, अभेद संबंध धारण करे तो तत्काल माहरा उपादानमां सिद्धिनुं कारण पद उत्पन्न थाय माटे में तो निश्चय कर्यो छे के हे जिनेश्वर ! अन्य सकल परद्रव्यनी सेवा तजी आपनीज सेवामां निरंतर वसवुं, आपने शुद्ध ध्येय जाणी आपनाज ध्यानमां निश्चल वृत्ति धारण करवी ॥ ९ ॥

कारण के हे जिनेश्वर ! कोइ पण द्रव्यनी कामना आपमां जणाती नथी तथा पोताना ज्ञानादि

सर्वे पर्यायोना आप कारण तथा ज्ञाता भोक्ता होवाथी आप पूरण ब्रह्म छो. रूप रस गंध स्पर्श संस्थान आदि पुद्गल द्रव्यना कोइ पण पर्यायनो आपने रंच मात्र पण संश्लेष नथी तेथी आप अरूपी छो. आप पोताना ज्ञानजन्य आनंदमां सदा लीन छो-तद्रूप छो माटे आपनुं अवलंबन धारण करूं छुं. कारण के जेम काष्टना अवलंबने लोहु जलमां तरी जाय तेम हुं आपना अवलंबने आ भयंकर भवार्णवमांथी तरी देवमां चंद्रमा समान शुद्ध सिद्ध परमात्म अवस्थाने प्राप्त थईश. ॥ १० ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ षष्ठम श्री स्वयंप्रभ जिन स्तवनं ॥

मो मनडो हेडाउ हो मिसरि ठाकुरो महदरो
॥ एदेशी ॥

स्वामी स्वयंप्रभने हो जाउं भामणे हरखे वार हजार ॥ वस्तुधरम पूरण जसु नीपन्यो भावकृपा किरतार ॥ स्वामी० ॥ १ ॥

अर्थः— महान् अखूट वैभवधारी इंद्र चंद्र चक्रवर्ती आदिना समूहवडे पण वंदनीक, स्वयं बुद्ध,

स्वयं आत्म लक्ष्मीना स्वामी श्री स्वयं प्रभु स्वामी-ने हजारवार-वारंवार, निरंतर, भामणे जाउं अत्यंत प्रमोद भावना वडे गुणानुरागी थइ सेवा भक्तिमां लीन थाऊं. के जेनो "वस्तु धरम पूरण नीपन्यो" अर्थात् अनादी कालथी ज्ञानावर्णादि कर्मवडे आवृत थइ रहेला होवाथी ज्ञानादि आत्म धर्मो पोतानुं कार्य शुद्ध रीतेकरी शकता नहोता, परवश परानुयायी थइ रह्या हता, कर्मबंधनना हेतु थइ रह्या हता, ते सर्वे धर्मो संपूर्ण प्रगटव्यक्त थया छे, सदन निरावरण थया छे, अप्रतिहत् पणे पोताना शुद्ध कार्ये निरंतर परिणमे छे तेथी अखंड अचल अविनाशी परमानंद दशाने प्राप्त थया छे परम नि-र्भय निराकुल दशामां अनंत शुद्धात्म अनुभूतिमां तल्लीन थइ रह्या छे. तथा "भाव कृपा किरतार" अर्थात चार गतिरूप अपरिमित भयंकर भवाटवीम विषय कषाय वशे छेदन भेदन ताडन तर्जन तिर-स्कार वियोग शोक भय आक्रंद विगेरे अनेक प्रकारनां असह्य शारीरिक तथा मानसिक दुःखों दीन अनाथपणे भोगवताने, अत्यंत कारुण्य भाव-नावडे सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप मोक्ष मार्ग दोरी, तेओना दुःखनो समूल नाश करी परमानंदमय

शिवपुरीमां विराजमान करो छो. एञ श्री स्वयं-प्रभु स्वामीनी दया परमोत्कृष्टता धरावे छे. पण जे विषय कषायनी वृद्धि करनार उपदेश, तथा पदार्थो आपी, अज्ञानी जीवोनी विषय कषाय तथा हिंसानी प्रवृत्तिने वधारे छे-तेनां कारणोने पुष्ट करे छे अने हमे दया करीए छीए एम कहेनार मिथ्याभिमानी जीवो तो हे प्रभु ! दयालु नहि पण वास्तविक न्याये आपना वचनानुसार हिंसाना अनुमोदक प्रतित थाय छे. ॥ १ ॥

द्रव्य धरम ते हो जोग समारवा, विषयादिक परिहार ॥ आतमशक्ति स्वभाव सुधर्मनो, साधनहेतु उदार ॥ स्वामी० ॥ २ ॥

अर्थः-प्राणातिपात; मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रतिअरति, परपरिवाद, मायामृषावाद तथा मिथ्यात्वशल्य ए पापस्थानमां मन वचन कायाने न प्रवर्त्तावतां स्याद्वाद युक्त जिनेश्वरना पवित्र कल्याणकारी वचनो वांचवा, सांभलवा, विचारवामां तथा तेना उपदेष्टा सद्गुरू आदिना विनय वैयावच्चादिमां तथा ज्ञान

दर्शन चारित्रनी वृद्धि तथा स्थिति करवामां प्रवर्त्ता-
ववां तथा " विषयादिक परिहार " अर्थात्
वीणा, सारंगी, दुंदुभी, विगेरे वाजीत्र तथा मेना,
पोपट, स्त्री, किनरी आदिना ललित मनोहर स्वर
ते श्रवणइंद्रिनो विषय, तथा स्त्री पुरुष पशु पक्षी
बालक बाग बगीचा तथा मनोहर आवास विगेरेना
चित्र विचित्र मनोज्ञ वर्ण तथा घाट ते नेत्रइंद्रिनो
विषय, तथा पारिजातक, कुंद, कमल, मालति,
गुलाब, अगर, तगर, चंदन, केशर, मलयागर विगेरे
पदार्थोनी मनोज्ञ सुगंध ते घ्राणेंद्रिनो विषय, तथा
स्वादीम, खादीम, पेय आदि वस्तुना मनोज्ञ मधु-
रादि स्वाद ते जीव्हाइंद्रिनो विषय, तथा स्त्री
पुरुषादिनां मनोहर अंग तथा शय्या आसन विगेरे
पदार्थोना मनोज्ञ स्पर्श ते स्पर्शेंद्रिनो विषय ए
पंचेंद्रिना विषयोनो त्याग करवो अर्थात ते विषयो
ने इष्ट रम्य भोग्य सुखकर जाणी तेओमां राग,
कामना, मूर्च्छा करवी नहि, प्राप्त स्वाधीन तथा
भोगववानुं सामर्थ्य होवा छतां पण ते विषयादिने
स्वभावाचरणथी चुकवाना हेतु तथा दुःखना निदान
जाणी तेओनो परिहार करवो ते साचो त्याग छे.
पण नहि मलवाथी न भोगववुं ते कंई त्याग नथी,

उक्तंच-(दश वैकालिके) "--जे य कंते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठी कुव्वइ ॥ साहीणे चयइ भोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ" -एम त्रिजोगनुं समीरवुं तथा विषयादिनो त्याग ते आत्माना मलिन थयेला ज्ञान दर्शन चारित्र आदि स्वभाविक धर्मने शुद्ध प्रगट करवामां कल्याणकारी साधनो होवाथी द्रव्यधर्म छे अर्थात् भाव धर्मना कारणो छे उक्तंच-" कारणा यासे दव्वं " अने कारण वगर कार्य सिद्धि अलभ्य छे, उक्तंच-कारण जोगे हो कारज नीपजेरे, एहमां कोइ न वाद । पण कारण विण कारज साधियेरे, ते निज मति उन्माद्-माटे विषय परिग्रहादि जे रागादि अशुद्धोपयोगना हेतुओछे तेनो त्याग करवो अने ज्ञान ध्यानादिक, जे रागादिनो नाश करी शुद्धात्म भाव प्रगट करवाना हेतुओ छे ते आदरवा, जेथी कार्य सिद्धि थाय. ॥ २ ॥

उपशम भावे हो मिश्र क्षायिकपणे, जे निज गुण प्राग्भाव ॥ पूर्णावस्थाने नीपजावतो;

साधन धर्म स्वभाव ॥ स्वामी० ॥ ३ ॥

अर्थः-एम त्रिजोगनुं समारवुं तथा विषयादिकनो त्याग, ए ज्ञानादि धर्मो प्रगट करवानां साधनो छे ते उपशम क्षयोपशम तथा क्षायिकभावे प्रगट थएला आत्म गुणोने पूर्ण शुद्ध अवस्थाने अर्थात् सिद्धदशाने प्राप्त करे छे. जे कंइ आत्म धर्म उपशमपणे क्षयउपशमपणे वा क्षायिकपणे प्रगट प्राप्त थयो ते क्रमे क्रमे आत्म गुणोनी शुद्धि करतो संपूर्ण शुद्धावस्थाने-सिद्ध अवस्थाने प्राप्त करवाने कारण रूप छे. जेम समकित प्राप्त थयाथी विरतिनी प्राप्ति थाय, अने विरतिवडे अप्रमत्त भावनी प्राप्ति थाय, तथा अप्रमत्त गुण वडे संपूर्ण कपायोनो नाश थाय, कपायोना नाशवडे वीतरागता प्राप्त थाय छे. अने वीतरागता वडे केवलज्ञान थाय. एम क्रमे क्रमे आत्म गुणोनी अधिक अधिक शुद्धि थइ संपूर्ण शुद्धि थाय. तेथी जे गुण प्राप्त थयो ते अधिक गुणनी प्राप्तिनो हेतु छे. जेम कोइ माणस महान् व्याधिग्रस्त होवाथी जरा पण खोराक लइ पचावी शकवाने असमर्थ होय, अत्यंत निर्बल होय पण ते कोइ रीते थोडुं बल पामे तो ते बलवडे धीमे धीमे अधिक अधिक खोराक पचावी अधिक अधिक

लवान थतो पूर्ण बलवान थाय. उक्तंच-" प्रशमरति ग्रंथे--आर्या छंद ॥ पूर्वं करोत्यनंतानुबन्धि नाम्नां क्षयं कषायाणाम् । मिथ्यात्व मोह गहणं, क्षपयति सम्यक्त्व मिथ्यात्वम् सम्यक्त्व मोहनीयं, क्षपयत्यष्टावतः कषायांश्च । क्षपयति ततो नपुंसक, वेदं स्त्रीवेद मथतस्मात् हास्यादि ततःषट्कं, क्षपयति तस्माच्च पुरुषवेदमपि ॥ संज्वलनानपि हत्वा, प्राप्नोत्यथ वीतरागत्वम् । सर्वोद्घातित मोहो, निहत क्लेशो यथाहि सर्वज्ञः ॥ भात्यनुप लक्ष्य राहंशोन्मुक्तः पूर्ण चन्द्रइव ॥" तेथी समकित प्राप्ति माटे अत्यंत उद्यम करो प्रथम समकितनी प्राप्ति करवी जेथी बीजा सर्वे गुणो प्रगट थाय. ।३।

समकित गुणथी हो शैलेशी लगे, आतम अनुगत भाव ॥ संवर निर्जरा हो उपादान हेतुता, साध्यालंबन दाव ॥ स्वामी० ॥ ४ ॥

अर्थः-अनादि विभाष योगे आत्म परिणति

परानुगत थएली छे अर्थात् ज्ञानशक्ति परद्रव्यने जाणवामां, दर्शनशक्ति परद्रव्यने देखवामां-निर्धार करवामां, चारित्रशक्ति परद्रव्यमां आचरण रमण करवामां, एम सर्व गुणो आत्मगुणना बाधकपणे परानुयायी प्रवर्त्ते छे पण ज्यारे समकितनो लाभ पामे त्यारे परानुगत थएली आत्म परिणतिने शुद्धात्म अनुगत पणे प्रवर्त्तावबानो अभिलाषी थाय, शुद्ध कार्य सन्मुख परिणति करे अर्थात् "समकित गुणथी" एटले चोथा गुणस्थानथी मांडी "शैलेशी गुण लगे" एटले चौदमा गुणस्थान सुधी परानुगत थएली आत्म परिणतिने वारी क्रमे क्रमे अधिक अधिक शुद्धताए वर्त्तावतो जाय. जेम जे परिणति अनात्म वस्तुने आत्म जाणवा-सद्दहवा विगेरेमां प्रवर्त्तती हती ते चोथे गुणस्थाने आत्माने आत्मा जाणवा-सद्दहवा विगेरेमां प्रवर्त्तावे तथा जे परिणति हिंसादि पांच अव्रतमां वर्त्तती हती ते पांचमे छठे गुणस्थाने अहिंसादि पांच व्रतमां वर्त्तावे तथा मद विषय कषाय निद्रा विकथामां जे परिणति वर्त्तती हती ते वारी सातमे गुणस्थाने अप्रमत्त भावे आत्मगुण रमणमां वर्त्तावे एम आठमे गुणस्थाने रसघात स्थितिघात गुण-

संक्रम गुणश्रेणि करे, अपूर्व स्थिरतामां आत्म परिणतिने प्रवर्त्तावे, संज्वलन क्रोध मान माया विगेरेथी आत्म परिणतिने वारी नवमे गुणस्थाने ते कषाय रहित-अकषायपणे-समभावमां वर्त्तावे सूक्ष्म लोभ शिवाय बाकीना कषायथी आत्म परिणतिने वारी दशमे गुणस्थाने अधिक शुद्ध समपरिणामे प्रवर्त्तावे, सर्व कषायनो क्षय करी बारमे गुणस्थाने वीतराग यथाख्यात चारित्रमां वर्त्ते, चार घातीया कर्मनो समूल क्षय करी तेरमा गुणस्थाने अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्यपणे आत्म परिणतिने वर्त्तावे-योग क्रियानी सकल चपलता वारी चौदमा गुणस्थाने अयोगी अवस्था करी पूर्ण परम निवृत्ति पद पामे. एम दरेक गुणस्थाने आत्म गुणनी अधिक अधिक शुद्धि करतो संपूर्ण सिद्धावस्थाने प्राप्त थाय. एम दाख राखी साध्यने आधारे साध्य सन्मुख उपादान-आत्म परिणतिनी शुद्धताना हेतुए वर्त्तवुं तेज संवर अर्थात् नवा कर्मनुं रोकवुं तथा निर्जरा एटले पूर्व संचित कर्म क्षय थवानो हेतु छे, उक्तंच-

" जो संवरेण जुत्तो, अप्पठ प्रसाधगोहि अप्पणं । मुनिउण आदि णियदं, णाणं

सो संवुणोदि कम्मरयं " ॥ ४ ॥

सकल प्रदेशे हो कर्म अभावता, पूर्णानंद स्वरूप ॥ आतम गुणनी हो जे संपूर्णता, सिद्ध स्वभाव अनूप ॥ स्वामि० ॥ ५ ॥

अर्थः-आपना आत्म अंगना सर्व प्रदेशथी ज्ञानावरणादि कर्म मलनो सर्वथा अभाव थयो छे तेथी सर्व प्रदेश स्फटिकमणि समान शुद्ध संपूर्ण निरावरण थया छे, कोइपण काले हवे कर्म मलनो रंच मात्र पण सश्लेष थवानो संभव नथी, तेथी आत्म अंगमां वसता अनंत गुण पर्यायना सर्व अविभागो संपूर्ण शुद्ध थया छे, शुद्ध कार्य परिणमे छे तेथी हे भगवंत ! आप पूर्णानंद स्वरूप छो. अर्थात् जगत्जीव तो उपाधिना प्रतिकारथी आनंद माने छे, परद्रव्यने भोग जाणी तेमां लयलीन थई रहे छे तेथी जगत्जीवनो आनंद तो क्षणभंगुर अपूर्ण तथा भयसहित छे, पण आप तो पोताना स्वाधीन अविनश्वर एक क्षेत्रावगाही गुण पर्यायोना भोक्ता छो, तेमां रमण करो छो, तेमां संतुष्ट तल्लीन थई आनंद भोगवो छो तेथी आपनो आनंद कोईपण काले नाश थाय अथवा दूर जाय तेम

नथी तथा स्वाधीन अने सहज होवाथी भय आकुलता स्पृहा रहित छे तेथी आपनोज आनंद एकांतिक आत्यंतिक पूर्णपदने योग्य छे. जगत्-जीवनो आनंद तो साचो आनंद नथी, अज्ञान वशे आनंद मनाय छे. एम आत्मगुणनी संपूर्ण शुद्धता, कर्त्तृता, भोक्तृता, परिणामीकता, ग्राहकता, व्या-पकता आदि तेज आपनो अनुपम सिद्ध स्वभाव छे. हवे कंईपण कार्य करवानुं शेष नथी, कंईपण आदरवानुं तेम छोडवानुं बाकी नथी तेथी अचल अबाधित शाश्वत परमानंदना स्वामी छो. ॥ ५ ॥

अचल अबाधित हो जे निःसंगता, परमातम चिद्रूप ॥ आतमभोगी हो रमता निजपदे, सिद्ध रमण ए रूप ॥ स्वामी० ॥ ६ ॥

अर्थः—आत्म परिणामने चल करनार जे राग द्वेष मोह परिणाम तेनो सर्वथा अभाव होवाथी अचल, तथा आत्म परिणामने शुद्धपणे परिणम-वामां घात, स्खलना करनार ज्ञानावरणादिक घातीकर्मनो अभाव होवाथी अबाधित छो। तथा धन धान्य क्षेत्र वस्तु हिरण्य आदि बाह्य परिग्रह तथा मिथ्यात्व क्रोध मान माया लोभ हास्य रति

अरति भय शोक जुगुप्सा पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद चौद अभ्यंतर परिग्रह, एम बाह्य अभ्यंतर परिग्रहथी सर्वथा रहित होवाथी निःसंगछो. तथा ज्ञानानुयायी सर्व धर्मो संपूर्ण शुद्ध निर्मल होवाथी परमात्मा छो. तथा संसार अवस्थामां कर्म संयोगे शरीरमां लीली भूतपणे वसी शरीर रूपे पुद्गल रूपे संसारी जीव पोताने माने छे पण आप तो शरीरथी सर्वथा अतित थयाछो तेथी मात्र ज्ञानरूप-ज्ञानमूर्त्ती छो तथा पुद्गल भोगनुं रमण तजी आप पोताना शुद्ध ज्ञान दर्शनादि गुणोमां रमण करवावाला आत्म भोगी छो, शुद्ध स्वाधीन अविनश्वर रम्यमां रमण करो छो तेथी आपनुं रमण संपूर्ण अने अविनश्वर होवाथी सिद्धपदे धारण करे छे ॥ ६ ॥

एहवो धर्म हो प्रभुने नीपन्यो, भाख्यो एहवो धर्म ॥ जे आदरतां हो भवियण शुचि हुवे, त्रिविध विदारी कर्म ॥ स्वामी० ॥ ७ ॥

अर्थः-एम प्रभु ! आपना ज्ञानादि सर्व धर्मो कर्म मलथी रहित शुद्ध प्रगट थया. अचल,

अविनाशी, अनंत, अज, अलेशी, अवेदी, अकषायी अचल, अक्रिय, नित्य, स्वाधीन, निर्द्वंध, परमानंद दशाने प्राप्त थया छो. अने जे रीते आप ए दशाने प्राप्त थया तेज उपाय, तेज धर्म, परम करूणा वडे भव्य जीवोने आ संसार समुद्र-मांथी पारंगत थई शिवभूमीए पहोंचवा प्ररूप्यो-उपदेश्यो छे. ते सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप धर्म आदरतां-सेवतां भव्य जीवो द्रव्यकर्म, भावकर्म अने नोकर्म ए त्रण प्रकारना कर्मनो नाश करी परम पवित्र शुद्ध निरावरण थाय. ॥ ७ ॥

नाम धरम हो ठवण धरम तथा, द्रव्य
क्षेत्रतिम काल ॥ भावधर्मना हो हेतु पणे
भला, भाव विना सहु आल ॥ स्वामी० ॥८॥

अर्थः-नामधर्म, स्थापनाधर्म, द्रव्यधर्म, क्षेत्रधर्म, कालधर्म, तथा भावधर्म एम धर्म स्वरूप अनेक प्रकारे छे, पण नाम, स्थापना, द्रव्य क्षेत्र तथा काल ए जो भावधर्मना सन्मुख, भावधर्मना हेतु होय अर्थात् भावधर्म साधवामां कारणभूत होय तो प्रशंसनीय कार्यकारी छे पण जो ते भावधर्मनी अपेक्षा शून्य होय तो आल अर्थात् निरर्थक धुळ

॥ अथ सप्तम श्री रुषभानन जिन स्तवनम् ॥ वारी हुं गोडी पासने ॥ ए देशी ॥

॥ श्री रुषभानन वंदिये, अचल अनंत गुण
वास जिनवर । क्षायिक चारित्र भोगथी,
ज्ञानानंद विलास जिनवर ॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थः-धर्म धुरंधर, धर्म तीर्थंकर, अशरण शरण, श्री रुषभानन प्रभुने आ लोक परलोकना विषय सुखनी अभिलाषा स्पृहा रहित तथा मान पूजाना लोभ रहित, आ संसार समुद्रमांथी तारण तरण जहाज जाणी, अत्यंत विशुद्ध भावनाए परम आदर पूर्वक वंदिये-सेवा भक्ति करिये. के जे प्रभु अचल अर्थात प्रदेश मात्र पण दूर न थाय तथा राग द्वेष मोह जन्य चपलता रहित एहवा ज्ञानादि अनंत गुणना वास-निधान छे तथा क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति भय शोक जुगुप्सा तथा त्रण वेद ए चारित्रमोहनीय प्रकृतिनो सत्ता सहित क्षय करी यथाख्यात् स्वभावाचरण ज्ञान दर्शन आदि अनंत स्वभाविक भोग जन्य आनंदमां अनंत ज्ञान सहित विलसे छे ॥ १ ॥

जे प्रसन्न प्रभु मुख ग्रहे, तेहिज नयन प्रधान जिनवर ॥ जिन चरणे जे नामीये; मस्तक तेह प्रमाण जिनवर ॥ श्री० ॥२॥

अर्थः—हे भगवंत ! आपना ज्ञान दर्शनादि सर्वे भोग उपभोगो आपने सदा स्वाधीन वर्त्ते छे. कोइ पण काले प्रदेश मात्र पण दूरवर्त्ती थाय तेम नथी तेथी आप सदा शोक रहित तथा ते भोग उपभोग ने कोइ पण बाधा पीडा तथा हरण करी शके तेम नथी तेथी परम निर्भय, तथा ते भोग उपभोगो पर द्रव्यना मेल-मलिनता रहित सदा शुद्ध होवाथी आप गिलानी रहित, तथा ते भोग उपभोगो अखूट आनंद जनक होवाथी अरति रहित छो, एम क्रोधादि सर्वे कषाय रहित होवाथी आपनुं मुखकमल सदा अम्लान परम प्रफुल्लित प्रसन्न छे, दर्शनीय छे. एहवा आप श्रीना आनंद वर्धक वदनकमलनुं, जे नेत्र वडे दर्शन थाय तेज नेत्र प्रधान कल्याणकारी मानुं छुं. तथा मोक्ष मार्गमां अति शीघ्रताए गमन करनार आपना चरण द्वयने, जे मस्तक वडे स्पर्श थाय तेज मस्तक पाम्युं प्रमाण गणु छुं ॥ २ ॥

॥ अरिहा पदकज अर्चीये, सलहीजे ते हथ्थ जिनवर ॥ प्रभु गुण चिंतनमें रमे, तेहज मन सुकयथ्थ जिनवर ॥ श्री० ॥३॥

अर्थः-अनादि कालथी आत्म साम्राज्यने कबजे करि राखनार मोहादि दुष्ट शत्रुउंने जेमणे अति तिक्षण ज्ञान बाण वडे गतःप्राण निवश करया छे एहवा हे श्री अरिहंत रूपभानन भगवंत।

सुवासमां मोहीत करी ते स्थले नेगी राखी तेना वल्लभ प्राणनो त्याग करावे के तेम जो मारुं मन, इंद्रियो तथा अंगोपांग विषय कषायना पदार्थो उपार्जन करवामां, मेलववामां, तेनुं सेवन, तेनी रक्षा करवामां रोकाय, स्वपर जीवना द्रव्य भाव प्राणनी हिंसा करवामां वर्त्ती-मददकारी थाय, पाप कर्मनुं उपार्जन करी भव भ्रमणना हेतु थाय, तो एहवा मन तथा इंद्रियोना लाभथी शुं ? तथा दश दृष्टांते दुर्लभ एहवा मनुष्य भवनो लाभ पण निष्फल-यदुक्तं- " यः प्राप्य दुःप्राप्यमिदं नरत्वं, धर्मं न यत्नं न करोति मूढः ॥ क्लेशः प्रबंधेन स लब्ध मब्धौ, चिंतामणिं पातयति प्रमादात् " ॥ तथा " ते धत्तुर तरूं वपंति भवने प्रोन्मूल्य कल्पद्रुमम् । चिंतारत्न मपास्य काचशकलं स्वीकूर्वते ते जडाः ॥ विक्रीय द्विरदं गिरींद्र सदृशं क्रीणंति ते रासभं । य लब्धुं परिहृत्य धर्ममधमा धावंति भोगाशया " ॥ ३ ॥

जाणो छो सहु जीवनी, साधक बाधक

भांत जिनवर ॥ पण श्रीमुखथी सांभली, मन पामे नीरांत जिनवर ॥ श्री० ॥ ४ ॥

अर्थः—हे त्रिलोक पूज्य ! दर्पण तलनी माफक आपनी केवल-ज्ञान मय उत्कृष्ट ज्योतिमां सर्व द्रव्यो पोताना त्रैकालिक संपूर्ण पर्यायो सहित प्रयास विना यथावत् प्रतिबिंबित थाय छे. तेथी सर्व जीवोनी साधक बाधक भांति आप जाणो छो अर्थात् अमुक जीव आ समये सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मोक्ष साधनमां वर्त्ते छे के रत्न त्रयना प्रत्यनीक पणे भव भ्रमणना हेतु कर्म बंधनमां वर्त्ते छे ए सर्व वृत्तांत हे करुणा निधि ! आप तो प्रत्यक्ष पणे जाणोछोज. पण जो आपना मुखारविंदथी हुं साधक भावमां वर्त्तु छुं एम सांभलुं तो मारूं मन निरांत पामे, भव भ्रमणना भयनो क्लेश शमे दूर थाय. ४ ॥

तीन काल जाणंग भणी, शुं कहिये वारंवार ॥ जि० ॥ पूर्णानंदी प्रभुतणुं, ध्यान ते परम आधार ॥ जि० ॥ श्री ॥ ५ ।

अर्थः—त्रणे कालनी परिणतिने हस्तामलकवत्

प्रत्यक्ष पणे समकाले जाणवा देखवावाला प्रभु प्रत्ये वारंवार शुं कहुं ! मने तो हे प्रभु ! स्वयंभू-रमण समुद्रनी पेठे अखूट आनंद रसथी भरपूर आपनाज पदनुं ध्यान-आपना पदमां एकाग्रचित्त-तल्लीनता तेज भव समुद्रथी तरवामां उत्कृष्ट आधार भूत छे. ॥ ५ ॥

कारणथी कारज हुवे, ए श्री जिनमुख वाण ॥ जि० ॥ पुष्ट हेतु मुज सिद्धिना, जाणी कीध प्रमाण ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थः—जगत् दिवाकर, संपूर्ण तत्त्व वेत्ता, श्री केवली भगवंत एम प्ररूपे छे के योग्य कारणना योग वडे कार्य सिद्धि थइ शके. अर्थात् कार्यना स्वरूपनो यथार्थ जाणनार कार्यनो अभिलाषी कर्त्ता, उपादान अने निमित्त कारण वडे कार्य सिद्धि पामी शके. उपादान—जे पदार्थ कार्य सन्मुख थाय तथा तेज संपूर्ण कार्य रुप थाय--कार्य सिद्धिए जेनी ख्याति जणाय ते उपादान कारण जाणवुं. जेम घटनुं उपादान कारण माटी तथा पटनुं उपादान कारण रु अथवा सूतर, कारण के माटीनो पिंड थाय, पिंडथी स्थास कुसलादि पर्यायो थइ माटीज

संपूर्ण घट रूप थाय, संपूर्ण घट थये पण माटीनी हयाती छे माटे माटी घटनुं उपादान कारण समजवुं. माटीथीज घट उत्पन्न थइ शके पण अन्य वस्तुमांथी घट थइ शके नहि. उक्तंच- " यदात्मकं कार्यं द्रश्यते तादिह तद द्रव्य करणं उपादान कारणं यथा तंतवः पटस्य इति "

निमित्त–जे उपादान कारणथी भिन्न होय छे पण ते विना कार्य सिद्ध थइ शकतुं नथी. कार्य सिद्ध करवामां जेनी खास जरूर छे ते निमित्त कारण छे. ते निमित्त कारण पद, कर्त्ताने आधिन वर्त्ते छे. जेम घटनुं उपादान कारण माटी छे अने माटीथा दंड चक्र चीवर. आदि भिन्न छे तो पण कुंभारने घट सिद्ध करवामां दंड चक्रादिनी अवश्य जरूर छे, ते विना घट बनावी शके नहि, तथी दंड चक्रादि घटनां निमित्त कारण जाणवां पण दंड चक्रादिने कुंभार ज्यारे माटीने घट रूप करवामां प्रवर्त्तावे (उपयोगमां ले) त्यारेज तेउं (दंड चक्रादि) निमित्त कारण कहेवाय पण कुंभार घट कार्य करवामां दंड चक्रादिने वापरतो न होय तो ते कारण कहेवाय नहि. कार्य करवा मांडता पहेलां

तथा कार्य सिद्ध थइ गया पछी ते दंडादिमां कारण पद नथी. कारण के कार्य कारण एक समये छे पण जे कार्थानंतर तथा प्रथम अप्रयुक्त काले दंडादिकने निमित्त कारण कहे छे ते मात्र नैगम नयनो मत जाणवो. एम कार्यना स्वरूपनो जाणनार कार्यनो अभिलाषी कर्त्ता साचा उपादान तथा निमित्तना योगे कार्य सिद्धि पामे पण कारण वगर कार्य सिद्धिनो आकाश पुष्पवत् अभाव जाणवो. तेथी हे प्रभु! ज्ञान पूर्वक निर्धार करतां माहरा परमात्म सिद्धिना पुष्ट हेतु आपने जाणी आपनुंज शरण अंगीकार करूं छुं. निमित्त कारणना बे भेद छे (१) पुष्टनिमित्त (२) अपुष्ट निमित्त. "कार्यस्य आसन्न निमित्तं इति तदेव पुष्टं" "दूर तरं कारण नैमित्तिकं तत् अपुष्टं" अर्थात् साध्य धर्म जेमां प्रगट-विद्यमान होय तथा जेमां कदापि कार्यनो ध्वंसक भाव न होय ते पुष्ट निमित्त जाणवुं. जेम तीर्थंकर भगवंतमां परमात्म पद प्रगट-विद्यमान छे तथा परमात्म पदना घातक भावनो जेमां सर्वथा अभाव छे माटे तीर्थंकर भगवंत परमात्म पद साधवामां पुष्ट निमित्त छे एम जाणवं

(पुष्ट हेतु जिनेंद्रोयं मोक्ष सद्भाव साधने)

अपुष्ट निमित्त-जेमां साध्य पद विद्यमान न होय, जे कर्त्तानी प्रेरणाथी कारण थाय छे, वली तेमां ध्वंसक भाव पण रहेलो होय ते अपुष्ट निमित्त छे. जेम दंड ते घटनुं अपुष्ट निमित्त छे कारण के दंडमां घट पणुं विद्यमान नथी वली कुंभार ज्यारे घट करवामां प्रवर्त्तावे तोज घटोत्पत्तिनुं निमित्त कहेवाय पण जो कुंभार घट ध्वंस करवामां वापरे तो ते घट ध्वंसना निमित्त कहेवाय माटे दंड ते घटनुं अपुष्ट कारण जाणवुं. माटे हे रुषभानन भगवंत ! आप मारा परमात्मपदना पुष्ट निमित्त छो माटे आपनीज सेवाथी मारी सिद्धि थशे एम जाणी आपनीज सेवा अंगीकार करुं छुं. ॥ ६ ॥

शुद्ध तत्त्व निज संपदा, ज्यां लगे पूर्ण न
थाय ॥ जि० ॥ त्यां लगे जगगुरु देवना,
सेवुं चरण सदाय ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ७ ॥

अर्थः-अज्ञानरूप अंधकारनो अत्यंत नाश करनार तथा सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र आदि संपूर्ण आत्म गुणनी सिद्धिने प्राप्त होवाथी जगत-

गुरु तथा जगतदेव हे करुणानंद स्वामी ! ज्यांसुधी शुद्धात्म तत्त्वरूप स्वाभाविक आनंद अमूर्त अनंतर संपदानी अने संपूर्णपणे सिद्धि प्राप्ति न थाय त्यां सुधी हे दीनदयाल ! आपना द्रव्य भाव रूप चरण युगलनुं निरंतर सेवन करुं एम भावना भावुं छुं ॥ ७ ॥

कारज पूर्ण कर्या विना, कारण केम मूकाय
॥ जि० ॥ कारज रुचि कारण तणा, सेवे शुद्ध
उपाय ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ८ ॥

अर्थः–जेम समुद्र पार पामवानो इच्छक पुरुष जो समुद्र वचे वहाणनो त्याग कर तो समुद्र पार जइ शके नहि अने वचे डूबी जाय. माटे हे भगवंत ! परमात्म सिद्धिरूप मारुं कार्य ज्यां सुधि सिद्ध थयुं नथी त्यांसुधि पुष्टालंबन रूप आपना चरण युगलनी सेवना केम छोडुं ? कारण के कार्य सिद्धिनो रुचिवंत पुरुष कार्य सिद्ध थता सुधी शुद्ध कारणोने यथार्थ पणे सेवे–आदरे ए नीति छे. ॥ ८ ॥

ज्ञान चरण संपूर्णता, अव्याबाध अमाय ॥
जि० ॥ देवचंद्र पद पामीयें, श्री जिनराज

पासय ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ९ ॥

अर्थः-स्तवन कर्त्ता श्री देवचंद्र मुनि कहे छे के तरण तारण सामान्य केवलीओमां राजा समान श्री ऋषभानन तीर्थंकरना चरण पसाय सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्रनी संपूर्णता तथा पूर्ण अव्याबाध पणुं तथा अमायी, अलेशी, अक्रंदा, अलोभीपणा आदि सर्वे आत्म गुणनी संपूर्णता रूप दरमां चंद्रमां समान परमात्म पदनी सिद्धि पामीये, कृत कृत्य थइये, अनंत काल सुधि सहज अखंड परमानंद विलासने पामीए. ॥ ६ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अष्टम श्री अनंतवीर्य जिन स्तवनम् ॥

चरणाली चामुंडा रण चडे ॥ ए देशी ॥

॥ अनंत वीरज जिनराजनो, शुचि वीरज परम अनंतरे ॥ निज आतम भावे परिणाम्यो, गुण वृत्ति वर्त्तनावंतरे ॥ मन मोह्युं अम्हारुं प्रभु गुणे ॥ १ ॥

अर्थः-सामान्य केवलीउमां राजा समान श्री अनंतवीर्य भगवंत ! आपनुं "वीर्य" ज्ञानदर्शनादि

सर्व गुणोने वर्त्तवामां आधारभूत आत्मवीर्य ते "शुचि" पर परिणामिकताथी सर्वथा रहित अत्यंत निर्मल तथा "परम" जगत्वासी कोइपण जीवोमां एवु आत्मवीर्य नथी तेथा सर्वोत्कृष्ट तथा "अनंत" ज्ञानादि अनंत गुणोमांथा कोइपण गुणने वर्त्तवामां जरापण स्खलना (व्याघात) न पामे तथा कोइपण काले हाण क्षीण न थाय तेथी अनंत छे.

एवुं श्री अनंतवीर्य भगवंतनुं परम पवित्र परमोत्कृष्ट अनंत आत्मवीर्य ते फक्त ज्ञान दर्शनादि पोतानाज अनंत गुणने परिणमवामां निःप्रयासपणे सहायरूप सदा परिणमे छे. एम श्री जिनेश्वरना परभावरूप मलिनताथी सर्वथा रहित परम पवित्र ज्ञानादि अनंत गुण जोइतेमां मारूं मन मोह्युं-रत थयुं-लीन थयुं-गुणानुरागी थयुं. ॥ १ ।

॥ यद्यपि जीव सहु सदा, वीर्य गुण सत्ता-वंतरे ॥ पण कर्म आवृत्त चल तथा, बाळ बाधक भाव लहंतरे ॥ मन० ॥ २ ॥

अर्थः-वीर्य ए जीवनो मूल गुण छे तेथी सर्व जीवो त्रणे काले वीर्य गुणनी सत्ता सहित छे एटले कोइपण जीव कोइपण काले वीर्य वगरनो

नथी; तथापि संसारी जीवोनुं वीर्य अनादिथी कर्म पटल वडे आवृत्त होवाथी आत्मगुणो संपूर्ण शुद्ध केवलज्ञान, केवलदर्शन, यथाख्यात् चारित्रादि रूप परिणमि शकता नथी अने तेथी पोतानी अनंत अव्याबाध आत्मीय सहज समाधिथी वियोगी रहे छे. तथा "चल" अर्थात् ज्ञानादि आत्म परिणतिमां निश्चल-स्थिर नहि रहेतां राग द्वेष वशे अनेक पुद्गल-पर परिणतिमां चलायमान थइ रह्युं छे, पर कार्यमां रोकाइ रह्युं छे, जेम कोइ पुरुष पर-कार्यमां पोतानी शक्ति रोके तो ते स्वकार्य साधी शके नहि तेमज ते वीर्य "बाल" हिताहितना ज्ञानथी रहित होवाथी "बाधक" अर्थात् पोताने अहितकारी पणे परिणमे छे कारण के बाल बाधक वीर्य वडे जगत् जीवो अज्ञान मिथ्यात्व कषाय रूप परिणमी अनेक प्रकारना कर्मो बांधि पोताने अत्यंत अहितकारी-दुःख समूह रूप भवोपाधि वहोरी ले छे. पण जो पोताना वीर्य गुणने मात्र सम्यक् ज्ञान ने आत्म परिणाममांज वापरे तो अनंत सुखना स्वामी थाय ॥ २ ॥

अल्प वीर्य क्षयोपशम अछे, अविभाग
वर्गणा रूपरे ॥ षडगुण एम असंख्यथी;

थाये योगस्थान स्वरूपरे ॥ मन० ॥ ३ ॥

सुहम निगोदी जीवथी, जाव सन्नीवर पज्ञात्तरे ॥ योगनां ठाण असंख्य छे, तरतम मोहे परायत्तरे ॥ मन० ॥ ४ ॥

अर्थः-सर्व छद्मस्थ जीवोनुं आत्म वीर्य क्षयोपशम भावे सदा होय पण सर्वथा आवृत्त थाय नहिं. जो सर्वथा आवृत्त होय तो चेतनतानो समूल अभाव थाय तेथी छद्मस्थ जीवोनो पण वीर्य गुण क्षयोपशम भावे होयज अर्थात् छद्मस्थ जीवोने पण वीर्यांतरायनो सदा क्षयोपशम होय अने वीर्यांतरायना क्षयोपशम वडे छद्मस्थ जीवोने अल्पवीर्यनी प्रगटता होय छे अने ते अल्पवीर्यनी प्रगटताना कारणथी रत्नत्रयनी मलिनताने योगे पोताना कर्तृत्त्व स्वभावने लीधे कर्म (क्रिया) रगे आत्म प्रदेश चलायमान करे छे एटले " आत्म प्रदेश परिस्पंदो योगः " ए सूत्र प्रमाणे योगी थाय छे. यदुक्तं-" छउमथ्थ वीरय लेश्या संगे, अभिसंधिज मति अंगेरे ॥ सूक्ष्म थूल क्रिया

ने रंगे, योगी थयो उमंगेरे ॥ " एम योग वशे कर्मनो ग्राहक थाय छे. ते योगनुं स्वरूप निचे प्रमाणे " वीर्यांतराय क्षयोपशमोत्पन्नो मनो वचन काय वर्गणालंबनः कर्मादान हेतुभूत आत्मप्रदेश परिस्पंदो योगः " वीर्यांतराय कर्मना क्षयोपशम वडे उत्पन्न मन वचन अने काय वर्गणानुं अवलंबन करनार कर्म ग्रहण करवामां कारणभूत आत्म प्रदेशनुं परिस्पंद (संचलन) ते योग छे. तिहां जघन्य वीर्यवालो जे जीवप्रदेश ते वली केवलीना तीक्ष्ण बुद्धि रूप शस्त्रे करी छेदतां जे वीर्यांशनो बीजो विभाग थई शके नहि ते वीर्य विभाग छे अने भावाणु पण तेनेज कहीये. तेवा लोकाकाशथी असंख्यात गुणा जे वीर्याणु तेणे करी सहित जे जीवप्रदेश तेनो समुदाय एटले जीवप्रदेशनी श्रेणी ते प्रथम वर्गणा, तेथी एक वीर्य विभागे अधिक एवी जे जीव प्रदेशनी श्रेणी ते बीजी वर्गणा, बे वीर्यविभागे अधिक एवी जे जीव प्रदेशनी श्रेणी ते त्रीजी वर्गणा, एम एकेक वीर्य-विभागे अधिक वीर्यवाला प्रदेशनी श्रेणी ते घनी-कृत लोकनी एक प्रदेशिक सूची श्रेणीने असंख्यात

मे भागे जेटला आकाश प्रदेश होय तेटली वर्गणाए एक स्पर्धक थाय, ते प्रथम स्पर्धकनी उत्कृष्ट वीर्यांश वर्गणाथी एटले छेल्ली वर्गणाथी एक ने अथवा संख्याते वीर्यविभागे अधिका कोइ जीव प्रदेश नथी परन्तु असंख्य लोकाकाश प्रमाण वीर्यांशे अधिक जीव प्रदेशनी श्रेणी ते बीजा स्पर्धकनी प्रथम वर्गणा जाणवी, वली तेथी एकेक वीर्यविभागे वधता वधता जीव प्रदेशनी वर्गणाए करी बीजो स्पर्धक थाय, तेथी वली असंख्य लोकाकाश प्रदेश भाग प्रमाण वीर्यांशे अधिक वीर्यवंत जीव प्रदेशनी श्रेणी ते त्रीजा स्पर्धकनी प्रथम वर्गणा, एणी परे श्रेणी प्रदेश असंख्येय भाग प्रमाण स्पर्धके परंतु जघन्य योगस्थानक थाय, तेथी अंगुलना असंख्यातमां भागना आकाश प्रदेश प्रमाण स्पर्धके वधतुं बीजुं योगस्थानक होय, तेथी वली तेटलेज स्पर्धके वधतुं त्रीजुं योग स्थानक होय, एम असंख्याता योगस्थान थाय. वीर्यांतरायना क्षयोपशमना असंख्य भेद छे तेथी उपर प्रमाणे योगना पण असंख्याता भेद थाय अर्थात् सूक्ष्म निगोदीआ लब्धि अपर्याप्ता जीवने भव प्रथम समये सहुथी जघन्य योग होय छे अने सन्नि पंचेंद्रि पर्याप्ता मनुष्य सौथी

उत्कृष्ट योग पामी शके छे एम मोहनी तरतमता वशे (वीर्यांतरायना क्षयोपशमना भेद वशे) सूक्ष्म निगोदिया लब्धिअपर्याप्ता जीवना भव प्रथम समयथी मांडी सन्नि पंचेंद्रिय मनुष्य सुधी असंख्यात योगस्थान जाणवां ॥ ३ ॥ ४ ॥

संयमने योगे वीर्य ते, तुम्हें कीधो पंडित दक्षरे ॥ साध्य रसी साधक पणे, अभिसंधि रम्यो निज लक्षरे ॥ मन० ॥ ५ ॥

अर्थः—ज्यांसुधी सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञाननी प्राप्ति थइ नथी त्यांसुधी संसारी जीव मिथ्यात्त अज्ञानवशे पौद्गलीक कार्यने पोतानुं कार्य मानी वीर्यांतरायना क्षयोपशम वडे प्राप्त थयेला आत्म-वीर्यने असंयममां अर्थात् स्वपर जीवनी द्रव्यभाव हिंसामां वापरे छे, पोताना वीर्यने बाल बाधक भावे परिणमावे छे, पोताना वीर्य वडे कर्मबंध करी भव भ्रमणनी उपाधि प्राप्त करे छे. पण हे भगवंत! आपे सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान वडे पोतानुं शुद्धोप-योग रूप कार्य जाणी बाल बाधक भावनो परिहार करी क्षयोपशम वडे प्राप्त थयेला वीर्यने संयम कार्यमां जोडयुं अर्थात् ज्ञानदर्शन चारित्रने निर्मल-

पणे परिणमवामां सहायकारी कर्युं. मन वचन तथा कायायोगने संयम कार्यमां जोड्या एम आत्मवीर्यने पंडितभावे तथा हितकारी भावे परिणमाव्युं. सच्चिदानंदमय शुद्धात्म द्रव्यना पोतानुं शुद्ध साध्य जाणी तेना रमणीआ–ते साधवाना उमंगी थइ अभिसंधिज वीर्यने (जे मतिपूर्वक उपयुक्त वीर्य ते अभिसंधिज वीर्य) निज लक्षमां एटले अनंत-सुखे पिंड जे शुद्धात्मपद ते साधवामां रमाव्युं-वापर्युं. एम अभिसंधिज वीर्यने शुद्ध कारक प्रवृत्ति-मां जोडी अबंधक भावे परिणमाव्युं ॥ ५ ॥

अभिसंधि अबंधक नीपने, अनभिसंधि
अबंधक थायरे ॥ स्थिर एक तत्त्वता वर्त्तती
ते क्षायिक भाव समायरे ॥ मन० ॥ ६ ॥

अर्थः–एम हे भगवंत ! आपनुं अभिसंधिज वीर्य अबंधक भावे वर्त्तवाथी अनभिसंधिज वीर्य पण अबंधक भावे परिणम्युं (मन चिंतनापूर्वक आहार विहारादिक जे करण व्यापार ते अभिसं-धिज वीर्य कहीये अने जे मन चिंतना विना केवल वचन अने कायाना व्यापार ते अनभिसंधिज वीर्य कहीये) माटे जेनी मनोवृत्ति–अंतरंग उपयोग

अबंधक भावमां वर्त्ते छे तेनी वचन अने कायानी क्रिया पण अबंधक भावमांज गणाय, संवर हेतुज गणाय. यद्युक्तं—भावास्रवाभावमयं प्रपन्ना, द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः ज्ञानी सदा ज्ञान मयैक भावो, निरास्रवो ज्ञायक एक एव. " एम द्रव्यसंवर तथा भावसंवरना स्वामी थइ कर्मबंधनो परिहार करी आत्मवीर्यने निर्मल रत्नत्रयमां सहायभूत करी पोताना निर्मल एक परमात्मतत्त्वमां स्थिर तल्लीन पणे वर्त्तता " क्षायिक भाव समायरे" शुद्धात्म परिणतिनो | व्याघात करनार घातीया कर्मनो समूल क्षय करी अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्य रूप पोतानी अनुपम अविनश्वर केवल लक्ष्मीने वर्या, तेरमा गुणस्थाने विराजमान थया ॥ ६ ॥

॥ चक्र भ्रमण न्याय सयोगता, तजी कीध अयोगी धामरे ॥ अकरण वीर्य अनंतता, निजगुण सहकार अकामरे ॥ मन० ॥ ७ ॥

अर्थः—पछी चक्रभ्रमण न्याये अर्थात् चक्रने फेरववा माटे कुंभार चक्रमां दंड घाली बहु जोरथी

अर्थः- हे भगवंत ! तमारा निरंतर शुद्ध परिणमता केवल ज्ञानादि गुणोने मारुं चेतना अनुगमे अर्थात् मारां चैतन्य उपयोग तदनुयायी वर्त्ते, केवल ज्ञान केवलदर्शन रूप परिणामवानो रसीयो थाय तो मारुं आत्मवीर्य " स्वरूप समायरे " राग द्वेषादि सर्व विभाविक कार्यमां उत्सुक तथा स्फुरायमान थतुं अटकी केवल आत्म गुणनेज सहायभूत पणे वर्त्ते. एम मारुं वीर्य पंडित भावे अबंधक पणे वर्त्ततां क्षायिक लब्धिने प्राप्त करशे एज पूर्णपदे सिद्ध थवानो साचो उपाय छे ॥ ९ ॥

॥ नायक तारक तुं धणी, सेवनथी आतम सिद्धिरे ॥ देवचंद्र पद संपजे, वर परमानंद समृद्धिरे ॥ मन० ॥ १० ॥

अर्थः-हे अनंत वीर्य प्रभु ! आ जगत्त्रयमां सर्वथी उत्कृष्ट अनंतवीर्य आपनुं होवाथी आपज नायक छो, वली भवसमुद्रमां डूबता भव्य प्राणीयोने आपे निर्माण करेला चरण जहाजे बेसाडी भवसमुद्रमांथी तारवाने आपज समर्थ होवाथी तारक छो, वली मोहादि शत्रुउंथी रक्षा करवामां आपज समर्थ होवाथी धणी छो, तेथी हे भगवंत !

आपनेज सेववाथी मारी सिद्धि थशे तथा देवमां चंद्रमा समान अरिहंत पदनी प्राप्ति थशे तथा परमानंदरूप उत्तम समृद्धिनी संप्राप्ति थशे. ॥१०॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ नवम श्री सूरप्रभ जिन स्तवनम् ॥

॥ देशी कडखानी ॥

सूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति शूरता, तेणे चिरकालनो मोह जीत्यो ॥ भाव स्याद्वादता शुद्ध परगास करी, नीपन्यो परमपद जग वदीतो ॥ सू० ॥ १ ॥

अर्थः-अनादिकालथी लागेलो मोहरूप महान् शत्रु के जे दर्शन-मोहनीय प्रकृति वडे आत्माना सम्यक् दर्शन गुणनो, तथा क्रोध वडे आत्माना क्षमा गुणनो, मान वडे आत्माना मार्दव गुणनो, माया वडे आत्माना आर्यव गुणनो, तथा लोभ वडे आत्माना मुक्ति-निर्लोभ-निस्पृह गुणनो, एम अनेक गुणनो घात करी आत्मानो शुद्ध सहज अपरिमित आत्मीय समाधिनो नाश करी भवरूप जेलखानामां त्रिलोकपूज्य आत्माने केद करी राखे

छे. तेनो (मोक्षनो) आत्मस्वरूपना ईश्वर, जगत् शिरोमणि श्री गुरु प्रभुए अनंत आत्मिक [illegible]- पराक्रमथी सम्यग् ज्ञान चारित्र रूप अनंत आत्मिक बल भेदक शस्त्रो वडे छिन्न भिन्न करी अनादिकालना पराजय-समूल नाश करी के जेथी फरी पण काले एवुं दुष्ट कृत्य करवाने पुनः समुत्थान-संजीवन पामे नहि. अने जीवादि पंचास्तिनो शुद्ध स्याद्वादपणे तथा आत्मना अभेदपणे शुद्ध निश्चय नये निजपर सत्ता जाणी सत्तागते रहेला अनंत धर्मात्मक शुद्धात्म द्रव्यने कर्म मलथी रहित अत्यंत शुद्ध प्रगट करी जगत् त्रयमां पूज्य, प्रशंसनीय, आह्लादकारी, आदरणीय परमात्म (मोक्ष) पद निपजाव्युं-संप्राप्त कर्यु. यदुक्तं-शार्दूल विक्रीडितम् ॥ " त्यक्त्वाऽशुद्धि विधायि तत्किल पर द्रव्यं समग्रं स्वयं, स्वद्रव्ये रति मेति यः सनियतं सर्वापराधच्युतः; बन्धध्वंस मुपेत्य नित्य मुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-चैतन्यामृतपूरपूर्ण महिमा शुद्धो भवन्मुच्यते " ॥१॥

प्रथम मिथ्यात्व हणि शुद्ध दंसण निपुण,

प्रगट करि जेणे अविरति पणाशी; शुद्ध चारित्रगत वीर्य एकत्वथी, परिणति कलुषता सवि विणाशी ॥ २ ॥ सू० ॥

अर्थः-हवे श्री सूर स्वामीए परमपूज्य परमात्म पद जे रीते सिद्ध कर्युं ते साधना क्रम सहित वखाणे छे.

प्रथम तो, जेना उदय वडे आतमा शुद्ध देवने अदेव, अदेवने शुद्ध देव, सुगुरुने कुगुरु, कुगुरुने सुगुरु, धर्मने अधर्म, अधर्मने धर्म, जीवने अजीव, अजीवने जीव, मोक्षने अमोक्ष, अमोक्षने मोक्ष मानेछे, जीवादि तत्त्वमां विपरित श्रद्धान करे छे तथा उत्कृष्ट सीत्तेर कोडाकोडी सागरोपमनी स्थितिनो बंध करे छे एवी मिथ्यात्वमोहनीय प्रकृति तथा मिश्रमोहनीय तथा सम्यक्तमोहनीयनो नाश करी चिंतामणि रत्न समान अत्यंत दुर्लभ शुद्ध निर्मल सम्यक्दर्शन संप्राप्त कर्युं के जे इंद्रत्व, चक्रित्व, चिंतामणि तथा कल्पवृक्षथी पण अधिक दुष्प्राप्य छे. उक्तंच- " इंदत्तं चक्कित्तं, सुरमणि कप्पद्दुमस्स कोडीणं। लाभो सुलहो दुलहो, दंसणो तीत्थनाहस्स ॥ " तथा जे विना नवपूर्व

सुधीनुं ज्ञानपण अज्ञान कहेवाय छे तथा जे विना दशमा पूर्वनुं ज्ञान तो थतुंज नथी, वली जे विना संसार परिभ्रमणनो सीमा आवती नथी, जे विना सम्यक्चारित्र-संयमनी प्राप्ति थई शकती नथी, जे विना द्रव्यचारित्र पालनार प्रथम गुणस्थाने वर्त्ते छे माटे श्री जिनेश्वर, सर्व धर्मनुं मूल तथा मोक्षनुं प्रथम पगथीउं कहे छे. यदुक्तं-श्री मदभयदेव

आचार्येण-" दंसण मूलो धम्मो, उवइठो जिणवरेहिं सीसाणं । तं सोउण सकन्नं, दंसण हीणो न वंदिठ्वो ॥ " लोकालोक प्रकाशक श्री जिनेश्वर देव पोताना शिष्यो प्रत्ये सर्व धर्मनुं मूल सम्यक्दर्शनने बतावे छे माटे दर्शन हीण पुरुषने वंदना करवी नहि. उक्तंच-**" सम्मत्त रयण भठा, जाणंता बहु विहावि सछाइं । सुद्धाराहण रहिआ, भमंति तछेव तछेव ॥"** सम्यक्दर्शनथी भ्रष्ट पुरुष बहु प्रकारना शास्त्र जाणता छतां पण शुद्ध आराधना रहित होवाथी संसार चक्र मां ज्यां त्यां भ्रमण कर्या करे छे कारणके सम्यक्दर्शन विना शुद्ध आराधनानी प्राप्ति होय नहि. **" शुद्ध क्रिया तो संपजे, पुग्गल**

आवर्त्तने अध्धरे " " जह मूलंमि विणठे, दुमस्स परिवार नच्छि परिवुढ्ढी । तह जिण दंसण भठा, मूल विणठा ण सिझंति ॥ "

जेम मूल विनष्ट, वृक्ष शाखा परिशाखानी परिवृद्धि पामे नहि, तेम धर्मनुं मूल सम्यक्दर्शन नष्ट थतां मोक्ष प्राप्ति थाय नहि.

" जिण पणत्त धम्मं, सद्दहमाणस्स होइ रयणमिणं । सारं गुण रयणाणय, सोवाणं पढम मोरकस्स ॥ "

गुण रत्नाकरमां सारभूत जे सम्यक्दर्शन ते श्री जिन प्ररुपित धर्मनी श्रद्धा राखनारने होय छे अर्थात् नयनिक्षेप पक्ष प्रमाण युक्त जिन प्ररुपित तत्त्वनी यथार्थ श्रद्धा ते सम्यक्दर्शन छे जे मोक्षनुं प्रथम सोपान (पगथी उं) छे.

" संजम रहिअं लिंगं, दंसण भठं न संजमं भणियं । आणा हीणं धम्मं, निरत्थयं होइ सव्वंपि ॥ "

साधुनो लिंग-वेश, संजम विना शोभा पामे

नहि तथा फल पामे नहि. अने सम्यकदर्शन भ्रष्ट ने संजम कह्युं नथी एम जिनेश्वरनी आणा रहित सर्व धर्मक्रिया निरर्थक अर्थात् मोक्ष फल आपी शके नहि.

तथा पांगनी वीशीमां कह्युं छे के "णाण गुणेहिं विहिणा, किरिया संसार वद्धणी भणिया" ज्ञान गुण वगरनी क्रिया संसार वधारनारी कही छे. कारण के सम्यकज्ञान वगर संवर थाय नहि. अने संवर विना सर्व समये कर्मबंध थाय अने कर्मबंधथी संसार वृद्धि थाय ए स्पष्ट छे. तथा सम्यकदर्शन रहितने व्रत पालता छतां पण तत्त्वार्थसुत्रमां अव्रती कहे छे "निशल्यो व्रती" मिथ्यात्वशल्य, मायाशल्य, अनेनिदानशल्य रहित व्रतधारी होय ते व्रती छे. तथा वली श्रीमान् यशोविजयजी कहे छे के "रागमल्हार–भावीजेरे समकीत जेहथी रुअडुं, ते भावनारे भावो मन करी परवडुं। जो समकीतरे ताजुं साजुं मूलरे, तो व्रत तरुरे दीये शिवपद अनुकूलरे। त्रूटक–अनुकूल मूल रसाल समकीत, तेह विण मति अंधरे। जे करे किरिया गर्व भरिया, हते जूठो धंधरे॥" मा टे

जो समकीतमूल ताजूं होय तो व्रततरु शिव फल आपी शके माटे मोक्षफलना इच्छक पुरुषे सर्वथी पहेलां समकीत रत्न प्राप्त करवानो उद्यम करवो ए सार छे. माटे समकीत शी वस्तु छे ते जाणवुं जोइये.

" जिय अजिय पुणपावा—सव संवर बंध मुक्ख निझरणा । जेणं सद्दहइ तयं, सम्मं खइगाइ बहु भेअं ॥ "

जीवा जीवादिक नव तत्त्वनुं स्वरूप श्री जिनेश्वरना आगम प्रमाणे नयनिक्षेप पक्ष प्रमाणे यथार्थ जाणी सद्दहवुं तथा हेय तत्त्वने छांडवानी रूची तथा उपादेय तत्त्वने आदरवानी रूची ते समकीत जाणवुं. तथा च तत्त्वार्थ सूत्रे—" तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्— " " जीवाजीवास्त्रव बंध संवर निर्जरा मोक्षास्तत्त्वम्— तेमां जीव-तत्त्व, संवरतत्त्व, निर्जरातत्त्व, अने मोक्षतत्त्व ए चार तत्त्व उपादेय छे था अजीव आस्त्रव बंध ए त्रण तत्त्व आत्म गुणना रोधक होवाथी हेय छे. माटे उपादेयने आदरवानी रूची तथा हेय तत्त्वने

छोडवानी रूची होय तेनेज समकीती जाणवो पण मात्र जीव्हाग्रे बोलवाथी समकीत नथी. कारण के श्री जिनेश्वर समकीतनां पांच लक्षण कहे छे. अने लक्षण विना लक्ष्यनो असद्भाव होय ए न्याय छे माटे “ उपशम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा अने आस्तिक्यता ” ए पांच लक्षणो जे जीवमां न होय ते जीवने समकीत छे एम केम मनाय ?

उपशम—क्रोधादि कषायोने उपशांत करे.

संवेग—सहज निरूपाधिक परमात्म पद प्रगट करवानी रूची.

निर्वेद—संसारने तथा पौद्गलीक विषयोने हालाहल विष समान जाणी तेथी निवृत्ति थवानी रूची.

अनुकंपा—स्वपर जीवना द्रव्य भाव प्राण घात करवानो परिणाम नहि.

आस्तिक्यता—अनंतज्ञानी अने वीतरागी आप्त श्री जिनेश्वरनुं एक पण वचन अन्यथा न होय एवी श्रद्धा.

एम सम्यक्‌ज्ञान तथा सम्यक्‌चारित्रनुं मूल-कारण सम्यक्‌दर्शन छे एम जाणी श्री सूर प्रभुजीए दर्शनमोहनीय प्रकृतिनो नाश करी अत्यंत शुद्ध निपुण क्षायिक समकीत प्रगट करी " अविरति पणाशी " पांच इंद्रिउ तथा मननो निग्रह नहि तथा षट्‌काय जीवना द्रव्य भाव प्राणनी हिंसानो त्याग नहि एवं बार प्रकारनी अविरति तेनो नाश कर्यो. पंच इंद्रिउंना त्रेवीश विषयोमां तथा मनना शुभाशुभ संकल्पोमां आत्म परिणामने विक्षिप्त करवाथी तथा स्वपर जीवना द्रव्य भाव प्राणनी हिंसाथी ज्ञानावरणादि कर्मनो बंध थाय छे अने कर्मबंध वडे सहज आत्म समाधिनो घात थइ अत्यंत दुःखदायक आ संसार समुद्रमां परिभ्रमण करवुंपडे छे.एम क्षायिकसमकीत वडे जेणे श्रद्धा पूर्वक जाण्युं तेनो परिणाम अविरतिमां केम प्रवेश करे ? एम अविरतिनो नाश थवाथी परभाव राग द्वेष विभावादिकनो त्याग तथा ज्ञान दर्शन चारित्रादि स्वगुणमां रमण रूप शुद्ध चारित्रथी पोताना आत्म वीर्यनी एकता करी अर्थात् सकल आत्म वीर्यने स्वभावाचरणमांज वर्त्तावी " परिणाति कलुषता

सवि विणाशी " आत्म परिणाममां कषायनो प्रवेश थवा दीधो नहि एम कलुषता परिणतिनो नाश कर्यो. ॥ २ ॥

वारि परभावनी कर्तृता मूलथी, आत्म परिणाम कर्तृत्व धारी । श्रेणी आरोहतां वेद हास्यादिनी, संगमी चेतना प्रभु निवारी ॥ सूर० ॥ ३ ॥

अर्थः-आत्म स्वरूपना अज्ञान वडे जीव, परभावनो कर्त्ता बने छे अर्थात् अमुक पदार्थने में सुवर्ण कर्यो, अमुकने में कुवर्ण कर्यो, अमुकने में मनोज्ञ रसवालो कर्यो, अमुकने में अमनोज्ञ रसवालो कर्यो, अमुकने में सुगंधी कर्यो, अमुकने में दुर्गंधी कर्यो, अमुकने मे मनोज्ञ स्पर्शवालो तथा अमुकने में अमनोज्ञ स्पर्शवालो कर्यो, तथा में सुंदर असुंदर शब्दादिक कर्या पण रूप रस गंध स्पर्शादि जे पुद्गल द्रव्यनो परिणाम तेने आत्मा कदापी काले करी शके नहि छतां पर द्रव्यना परिणामने अज्ञान वडे पोतानी क्रिया मानी ले छे. तथा अमुक जीवने में सुखी कर्यो अमुकने में दुःखी कर्यो एम परजीवना कर्मफलने पोतानी क्रिया मानी ले छे. मन

वचन कायाना योगनी क्रियानुं ममत्व करी ते क्रियानो कर्त्ता पोताने माने छे. तथा परजीवे मने सुखी वा दुःखी कर्यो एम पोताना कर्मफलने परजीवनी क्रिया मानी ले छे. एवा मिथ्याभिमान वडे ज्ञानावरणादि कर्मनो बंध करे छे पण श्री सूरस्वामीए सम्यक्ज्ञानवडे एवा मिथ्याभिमाननो नाश करी पोतानी सहज आत्मीय ज्ञानादि क्रियामां पोतानुं कर्त्तापणुं आदर्युं. यदुक्तं-" आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं, ज्ञानादन्यत् करोति किम ? परभावस्य कर्त्ताऽऽत्मा, मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ।" माटे वस्तुतः परद्रव्यनो कोइपण कर्त्ता थइ शके नहि ए न्याय छे-" यःपरिणमति स कर्त्ता, यःपरिणामो भवेत् तु तत् कर्म । या परिणतिः क्रिया सा, त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया "

अर्थः-जे परिणमे ते कर्त्ता छे अने परिणाम ते तेनुं कर्म छे अने परिणति ते तेनी क्रिया छे एम ए त्रणे भाव वस्तुतः अभेद छे. तथापि-" आ संसारत एव धावति परं, कुर्वेऽह मित्युच्चकै-दुर्वारं न तु मोहिनामिह महाहंकार रूपं तमः ।

तद्भूतार्थ परिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत्, तत्किं ज्ञान घनस्य वन्धन महोभूयो भवेदात्मनः ”

अर्थः—आ जगत्मां मोटा अज्ञानी जीवो जाणे छे के “हुं पर द्रव्यने करुं छुं” एवा पर द्रव्यना कर्तृत्वना अहंकाररूप अतिशय दुर्वार अज्ञान अंधकार अनादिकालथी चाल्यो आवे छे पण जो तेनो शुद्ध निश्चय ज्ञानवडे एकवार पण समूल नाश करी नांखे तो शुद्ध केवलज्ञाननी प्राप्ति थाय अने पछीथी कदापि एवा अज्ञान अंधकारने न करे—कर्मबंध करे नहि. तथा “श्रेणी आरोहतां” क्षपक श्रेणीए चढतां हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा ए हास्यादि षट्क तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अने नपुंसकवेद, एम नव नोकषायमांथी पोतानी आत्म परिणतिने वारी अकषाय भावमां—शुद्ध स्वरूपमां तल्लीन करी ॥ ३ ॥

भेदज्ञाने यथा वस्तुता उलखी द्रव्य पर्यायमें थइ अभेदी । भाव सविकल्पता छांडि केवल सकल, ज्ञान अनंतता स्वामी वेदी ॥ सूर० ।४।

अर्थः-"द्रव्यना सर्वे धर्मो तेना परमगुणना अनुयायीपणेज वर्त्ते" ए न्यायानुसारे आत्मानो परमगुण जे चेतनता तदनुयायीपणे वर्त्तता ज्ञान दर्शन चारित्र तप वीर्यादि परिणामोने पोताना परिणाम जाण्या सद्द्ह्या अने एथी विपरित, चेतनतान अनुयायीपणे नहि वर्त्तता, रूप रसगंध स्पर्शादि तथा चलन सहायादिक परिणामोने पर द्रव्यना परिणाम जाण्यां सद्द्ह्या. एम भेदविज्ञानना प्रबल पराक्रम वडे पोताना गुण पर्याय तथा पर द्रव्यना गुण पर्यायने यथार्थ भिन्न भिन्न जाणी पर द्रव्यना गुण पर्यायमांथी अहंममत्व उठावी राग द्वेषादि विभाव परिणामने दुःखदायक तथा कर्मबंधना हेतु जाणी, पोतानी आत्म भूमिमांथी तेनो तदन अभाव करी, पोताना गुण पर्यायने पोताथी अभेद स्वरूप जाणी तेमांज अभेदपणे तल्लीन थया. सकल्प विकल्प रूप समल परिणामने तजी निर्विकल्प-अचल परिणामरूप यथाख्यात् चारित्र-द्वादशम गुणस्थान पामी अंतर मुहूर्त्तमां घातीकर्मनो नाश करी श्री सूरस्वामी अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्यना स्वामी तथा भोक्ता थया. यदुक्तं

मालिनी छंद-निज महिमरतानां भेदविज्ञान

शक्त्या; भवति नियतमेषां, शुद्ध तत्त्वोपलम्भः । अचलित मखिलान्य द्रव्य दूरे स्थितानां, भवति सति च तस्मिन्न क्षयः कर्म मोक्षः ॥

अर्थः–जे पुरुष भेद विज्ञाननी शक्तिवडे आत्म स्वरूपनो महिमामां लीन थाय छे तेने निश्चय शुद्ध तत्त्वनी प्राप्ति थाय छे; अने शुद्ध तत्त्वनी प्राप्ति थवाथी सर्व परद्रव्य तथा परद्रव्यना परिणामथी दूर वर्त्ते छे, अक्षय मोक्ष अवस्थाने प्राप्त थाय छे. माटे ज्यांसुधी भेद विज्ञाननी प्राप्ति थई नथी त्यांसुधी अवश्य सर्वे समय कर्मबंध थाय छे अने भेद विज्ञानवडे कर्मबंधथी मुक्त थवाय छे.

" भेद विज्ञान तः सिद्धाः, सिद्धा ये किल केच न । तस्यैवा भावतो बद्धा, बद्धा ये किल केच न "

अर्थः–जे कोइ सिद्ध थया ते भेद विज्ञान वडेज सिद्ध थया छे अने जे कर्मथी बंधाय छे ते भेद विज्ञानना अभावथीज बंधाय छे माटे जो कर्म-

बंधनो अभाव करवानी रुची होय तो भेद विज्ञान-सम्यक् ज्ञाननी प्राप्ति करवी ए सार छे. ४ ॥

वीर्य क्षायिकबळें चपळता योगनी, रोधि चेतन कर्यो शुचि अलेशी; भाव शैलेशीमें परम अक्रिय थइ, क्षय करी चार तनु कर्म शेषी ॥ सूर० ॥ ५ ॥

अर्थः-एम श्री सूरस्वामी अनंत चतुष्टयने प्राप्त करी तेरमा गुणस्थाने तीर्थंकर नामकर्मना उदये भव्य जीवोने आ दुःखदायक भव समुद्रमांथी तारनार स्याद्वाद नय युक्त जीवाजीवादि तत्त्वनो उपदेश आपी-पछी प्राप्त करेला क्षायिकवीर्यना बल वडे, करण वीर्य वडे थती चपलता दूर करी मेरू पर्वतनी पेठे निःप्रकंप-शैलेशी करण करी. मन वचन अने कायानी क्रियानो त्याग करी पोताना आत्म द्रव्यने पवित्र-पुद्गल परिणामना संश्लेष रहित-अलेशी करी परम अक्रिय अवस्था धारण करी, बाकी रहेला वेदनीय, नाम, गोत्र, अने आयु ए चार अघातीया कर्मनो सर्वथा नाश करी "पूर्व प्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदा त्तथा गति परिणामाच्च" पूर्व प्रयोगना हेतुए असंग होवाथी

कर्मबंधनो सर्वथा नाश होवाथी तथा गति परिणामवडे तुंबीना दृष्टांते आठमी इशिप्रभारा पृथ्वी अर्थात् सिद्ध अवस्थामां विराजमान थया ॥ ५ ॥

वर्ण रस गंध विनु फरस संस्थान विनु,
योग तनु संग विनु जिन अरूपी। परम
आनंद अत्यंत सुख अनुभवी, तत्त्व तन्मय
सदा चित्स्वरूपी ॥ सूर० ॥ ६ ॥

अर्थः—श्री सूरस्वामी सिद्ध अवस्थाने प्राप्त थया. ते सिद्ध स्वरूप केवुं छे—पांच प्रकारना वर्ण, पांच प्रकारना रस, बे प्रकारनी गंध, आठ प्रकारना स्पर्श, छ प्रकारनां संस्थान, त्रण प्रकारना योग, पांच प्रकारनां शरीर तथा अंतरंग अने बाह्य ए बे प्रकारना परिग्रहथी रहित तथा राग द्वेषादि विभावथी पण रहित होवाथी सर्व नये अरूपी अवस्थाने संप्राप्त छे। कारण के जीवनुं शुद्ध स्वरूप वर्णादि तथा रागादि भावथी रहित छे. यदुक्तं—"तत्थ भवे जावाणं, संसारत्थाण होंति वणाइ।
संसार पमुक्काणं, णात्थिहु वणादओ केइ ॥
जीवस्स णच्छि वणो, णावि गंधो णावि रसो

णविय फासो । णवि रूवं ण सरीरं, णवि संठाणं ण संहणणं ॥ " पण संसार अवस्थामां जीव कर्मबंधयुक्त होवाथी शरीरादिमां अहंममत्व करी वर्ते छे तेथी व्यवहार नये रूपी कहेवाय छे. जेम जे घडामां घृत भरेलुं होय ते घीनो घडो कहेवाय पण वास्तविक रीते जोतां घडो कांई घीनो नथी. माटीनोज छे. यदुक्तं " पज्ञतापज्ञतय, जे सुहुमा बायराय जे चेव । देहस्स जीव सणा, सुत्ते व्यवहारदो उत्ता ॥ " पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म, बादर, एकेंद्रिय बेइंद्रिय विगेरे शरीरने जे जीव संज्ञा कही छे ते व्यवहार नयनी अपेक्षा जाणवी. कारण के चौदे जीवस्थान ते पुद्गल संगे छे, जीवनो मूल स्वभाव नथी. पण श्री सूरस्वामी तो कर्मबंधथी—संसार अवस्थाथी सर्वथा मुक्त होवाथी व्यवहार तथा निश्चय बंने नये अरूपी अवस्था भोगवे छे तथा " परम आनंद अत्यंत सुख अनुभवी, तत्त्व तन्मय सदा चिरस्वरूपी " परम आनंद—सर्वोत्कृष्ट आनंद जेनुं आ त्रिलोकमां कोई उपमान नथी एवा परमानंदने तथा जे सुखनो कोईकाले अंत नथी एवा सहज अकृत्रिम अनुप-

माच्यो, कारणके आलोक परलोकना विषयसुखनी आकांक्षा रहित अरिहंतादि पंच परमेष्टी तथा आगम, साधर्मीक उपर पक्षपात विना गुणीपणा माटे जे राग ते प्रशस्तराग जाणवो, ते जोके पुण्यबंधनो हेतु छे तथापि छता आत्मगुणने स्थिर थवानो तथा नवागुण प्रगट करवानो हेतु छे. यदुक्तं " नाणाइसु गुणेसु, अरिहंताइसु धम्म रूवेसु । धम्मोवगरण साहम्मीएसु धम्मच्छ जोय गुण रागो ॥ सो सुपसथ्थो रागो, धम्म संयोग कारणो गुणदो । पढमं कायव्वो सो पत्तगुणे खवइ तं सव्वं " ॥७॥

आत्मगुण रुचि थये तत्त्व साधन रसी, तत्त्व निष्पत्ति निर्वाण थावे । देवचंद्र शुद्ध परमात्म सेवन थकी, परम आत्मीक आनंद पावे ॥ सूर० ॥ ८ ॥

अर्थः–ज्ञानादि अनंत आत्म गुणोने शुद्ध संपूर्णपणे प्रगट करवानी रुची थाय तोज ते पुरुष तत्त्व साधनानो रसीउं थइ संपूर्ण आत्मतत्त्वनी सिद्धि–निर्वाण पद पामे. देवचंद्र मुनि कहे छे के

थावो–राग द्वेषादि सकल विभावथी आत्म परिणामने वारी तदनुगत करो. " चिदानंद रस अनुभवी " केवल ज्ञान वडे त्रैकालिक पर्यायो सहित सर्व द्रव्यना युगपत् प्रत्यक्ष ज्ञाता होवाथी पोताना आत्म द्रव्यने सर्वदा अखंड अव्याबाध ज्ञानदर्शनादि गुणे सदा परिपूर्ण, कोइपण द्रव्य जेने कोइपण काले बाधा करी शके नहि माटे अबाधित जुए छे; तेथी तज्जन्य निर्भयता–निराकुलता स्वाधीनतामय ज्ञानानंद रसना अनुभवी–आस्वादन भोग लेनार श्री विशाल देवनी तत्त्व समाधि सहज अर्थात् स्वाभाविक सर्व पर द्रव्यनी अपेक्षा वगर मात्र पोतानाज द्रव्यथी उत्पन्न, तथा अकृत–पर द्रव्ये जेने उत्पन्न करी नथी एवी, तथा निरूपाधि अर्थात् पौद्गलीक विषयो भोगवतां अनेक प्रकारनी शारीरिक तथा मानसिक व्याधिउ उपजे छे, पर रमणरूप मिथ्या चारित्र होवाथी आत्मगुण घातक अनेक प्रकारनां दुष्ट कर्म बंधाय छे पण श्री विशाल देवनी समाधिमां कोइपण प्रकारनी उपाधिनो सद्भाव तथा उपजवानो संभव नथी तेथी निरुपाधि छे माटे हे गुणानुरागी भव्य जीवो ! निरुपचरित, निस्संग, निःप्रयासिक,

निर्बंध, एकांतिक, आत्यंतिक अने स्वतंत्र समाधि-मय श्री विहरमानस्वामीना अरिहंत पदने आपणो आत्मा निर्मल करी भव भ्रमणथी मुक्त थवा निमित्त वंदो छे-तेमां लीन थइए, वळी श्री विशाल स्वामी के जे ज्ञानादि अनंत लब्धीना स्वामी तथा जन्म जरा मरण तथा क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा विगेरे कषाय, अज्ञान जलथी भरपूर आ अपार पारावार भयंकर भव समुद्रथी उद्धारी अचल अव्याबाध अरुज आत्मीय अनंत सुखना स्थानक मोक्ष महे-लमां धरनार, सर्व प्राणीओना अघातक, करुणा सागर, तथा अनंतगुणना पात्र महान् धर्मात्मा छे तेमने स्तवो-स्तुति करो तेमना गुणोनुं गान, स्मरण, चिंतन, अनुभव करो. ॥ १ ॥

भव उपाधि गद टालवा, प्रभुजी छो वैद्य
अमोघरे ॥ रत्नत्रयी औषध करी, तुम्हें
तार्या भविजन उघरे ॥ तुम्हें० ॥ अरि० ॥२॥

अर्थः—महान् दुष्ट शत्रुरूप कर्मराजाना भवरूप कारागृहमां वसतां अज्ञान कषाय अने मिथ्यात्व-रूप मिथ्याआहार विहारना सेवनथी, आत्म

द्रव्यना ज्ञानदर्शनादि परिणामो दूषित थवाथी आत्माने तीक्षण शल्य तुल्य असह्य दुःख क्लेश आपनारा क्रोध मान माया लोभ शोक वियोग मिथ्यात्व अज्ञान विगेरे महान् दुर्निवार सन्निपातिक रोगो उपजे छे जे रोगोना प्रभाव वडे वली ज्वर, अतिसार, जलोदर, कठोदर, भगंदर, क्षय, कुष्ट, प्रमेह, उपदंश, नेत्ररोग, कर्णरोग, मुखरोग, विगेरे अनेक शारीरिक रोग जन्य वेदनाउं भोगववी पडे छे, पण हे विशाल प्रभुजी ! आपेज सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रनी ऐक्यतारूप अमृत औषधीनुं दान करी ते सर्व सन्निपातिक रोगोथी भव्य जीवोना समूहने मुक्त करी अनंत आत्म वीर्ये भरपूर तुष्ट पुष्ट करी आगामि कोइ पण काले ते रोग पुनः उत्पन्न न थाय एवा अत्यंत निरोगी कर्या. माटे हे प्रभुजी ! आ भुवनत्रयमां निःसंदेहपणे अमोघ–साचा–सफल (जेनो उपाय निष्फल जाय नहि एवा) वैद्य आपज छो. ।२।

भवसमुद्र जल तारवा, निर्यामक सम जिनराजरे ॥ चरण जहाजें पामीए, अक्षय शिवनगरनुं राजरे ॥ अक्षय० ॥ अरि० ॥३॥

अर्थः–राग रूप जले परिपूर्ण दुस्तर आ भयानक भवसमुद्र के जेमां हुं अनादिकालथी निराधारपणे ज्यां त्यां भ्रमण करी दुःसह भय क्लेश रोग शोक वियोग तृष्णा आक्रंद विगेरे अनेक दुःखो सहन करुं छुं, अत्यंत सहज समाधिप्रद माहरी शुद्धात्म भूमिरूप शिवनगरथी अत्यंत दूरवर्त्ती–वियोगी थइ रह्यो छु. ते भव समुद्रथी पारंगत करी निर्विघ्नपणे शिवनगरे पहोंचाडवा माटे हे विशालप्रभु जिनेश्वर ! आप निर्यामक अर्थात् जहाजना सौथी अग्रेसर चलावनार छो माटे जो बीजा सर्वनी आकांक्षा छोडी आपना स्वभावाचरणरूप पंचमहाव्रतरूप जहाजनो आश्रय लइए–तेमां अमारा आत्माने स्थापन करीए तो सहजे लीलामात्रमां निःप्रयासे आ भयंकर भवसमुद्रथी पारंगत थइ कोइपण रीते जेनो नाश न थाय–सदा शाश्वत रहेनार एवुं शिवनगरनुं निष्कंटक राज्य पामी एकांतिक शाश्वत सहज परमानंदना स्वामी थइए. ॥ ३ ॥

भव अटवी अति गहनथी, पारग प्रभुजी सत्थवाहरे ॥ शुद्ध मार्ग देशक पणे, योग

क्षेमंकर नाहरे ॥ योग० ॥ अरि० ॥ ४ ॥

अर्थः-आ भवरूप अटवी-जंगल के जेमां अमारो आक्रंद परिताप जोइ करुणा रसवडे जेनुं हृदय भिंजे तथा अमारी दया करे एवा सद्गुरु-रूप सज्जननो समागम अत्यंत दुःप्राप्य छे तेथी निर्जन, तथा जेथी पारंगत थवानो साचो-सुगम मार्ग पामवो अतिशय मुश्केल होवाथी अत्यंत गहन-घोर, तथा जेमां अमारी ज्ञानदर्शनादि अमूल्य आत्म संपदाने लुंटी लेवावाला तीव्र अज्ञान मिथ्यात्वादि दुष्ट स्वभावना धारक कुगुरु रूप लुंटाराओ वसे छे, तथा अमारा ज्ञानदर्शनादि आत्मप्राणनो घात करनार क्रोध मान माया लोभ विगेरे निर्दय श्वापदो वसे छे एवा घोर जंगलमां भूलो पडेलो हुं मारा आत्मीय कुटुंब तथा लक्ष्मीना वियोग वडे दयामणी अवस्थामां भय, त्रास, रोग, शोक, वियोग, तृष्णा, आताप विगेरे परितापो सहन करूं छुं, शांतिप्रद संवर रूप जलना अभाव वडे अत्यंत तृष्णा क्लेश सहुं छुं तेथी (भवाटवीथी) पारंगत थइ आत्म लक्ष्मी वडे परिपूर्ण शिवनगरे दोरी लइ जनार आपज समर्थ सार्थवाह छो. कारण के आपज शुद्ध-अविसंवाद मार्गना बताववावाला

कल्याणकारी सिद्धिपद योगना नाथ-मालीक-पणोना यथार्थपणे प्रगट करनार छो. तथा हे नाथ! आपना मन वचन अने काय ए त्रणे योग क्षेमंकर, कल्याणकारी, पाप क्लेशथी मुक्त करनार छे. अने संसारी जीवोए मन वचन काया स्त्री पुत्र धन कुटुंबादि अनेक योग कर्या ते योग बहु वार विनाश थया-क्षेम कुशल न रह्या. पण प्रभुजी शुद्धात्म अनुभव योग करावी शाश्वती केवलज्ञानादि लक्ष्मी-नो शिवयोग करावो छो माटे योगक्षेमंकर छो ॥४॥

रक्षक जिन छ कायना, वली मोह निवारक स्वामी रे ॥ श्रमण संघ रक्षक सदा, तेणे गोप ईश अभिरामरे ॥ तेणे० अरि० ॥ ५ ॥

अर्थः-जे अज्ञान विषय अने कषायादि दोषोथी निवृत्त थया नथी एवा कुदेवादि "अहिंसक" पदने योग्य नथी कारण के तेउं सर्व जीवस्थान तथा सर्वे जीवोना द्रव्यभाव प्राणने तथा द्रव्य भाव प्राणनी हिंसाना हेतुउंने तथा ते हेतुउंना प्रतिकारने यथार्थ जाणता नथी तथा विषय कषायादि सहित होवाथी प्रमाद अवस्थामां अनेक जीवना द्रव्यभाव प्राणने हणी परने तथा पोताना आत्माने दुःखदायक

थाय छे. पण हे विशालप्रभु ! आप तो अज्ञान विषय अने कषायादि दोषोथी सर्वथा निवृत्त होवाथी पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजःकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय तथा त्रसकाय ए छ कायना जीवोना द्रव्यभाव प्राणना यथार्थ ज्ञाता छो तथा विषय कषायादि दोषोए रहित होवाथी निरंतर अप्रमाद अवस्थामां अवस्थित रही कोइपण जीवना द्रव्यभाव प्राणोने रंच मात्र पण दुषवता नथी माटे सत्य न्याये आ त्रिभुवनमां "जीव रक्षकनुं" बिरुद आपनेज लायक छे.

तथा स्थितिबंध अने रसबंधनो हेतु सर्व कर्मनो राजा तथा संसारी जीवोनो अजीत शत्रु एवा मोहरूप महान् शत्रुथी संसारी जीवोने बचाववा माटे तथा ते मोहने नाश करवानो साचो उपाय बतावनार तथा ते उपायमां प्रवृत्त थवाने प्रेरणा करनार एक आपज समर्थ शुभट छो तेथी साचा मोहनिवारक पण आपज छो.

तथा अत्यंत दुःखदायक भवाटवीमांथी नीकली अत्यंत कल्याणकारी मोक्ष नगरे जवाना जिज्ञासु, मोक्ष सन्मुख साचा मार्गे गमन करनार, क्रोध मान माया लोभ आदिने दूर करी सम परिणामे

चंद्रे ॥ मोचक सर्व विभावथी, [illegible]
मोह अरिंदरे ॥ झी० ॥ अरि० ॥ ७ ॥

अर्थः-सत्तागते रहेला अनंत आत्मधर्मोने संपूर्ण शुद्ध प्रगट करवामां अर्थात् आ संसार समुद्रथी पारंगत थइ मोक्ष अवस्था प्राप्त करवामां हे विशालप्रभु अरिहंत ! आप पुष्टकारण-अनंतर कारण छो. उक्तंच-सिद्धसेन पूज्यैः " पुष्ट हेतु-र्जिनेंद्रोयं मोक्ष सद्भाव साधने " तेथी सर्व मुनिउ-ज्ञानीउंमां चंद्रमा समान प्रधान लोकालोकना ज्ञायक आपज आ भयंकर भवसमुद्रमांथी तारनार छो; तथा राग द्वेष मोह विगेरे सर्व विभाव थी मुक्त करवावाला तथा सर्व शत्रुउंमां श्रेष्ठ अत्यंत बलवान् मोह शत्रुथी जीतावनावाला छो. ॥ ७ ॥

कामकुंभ सुरमणि परे, सहजे उपगारी थाय
रे । देवचंद्र सुखकर प्रभु, गुण गेह अमोह
अमायरे ॥ गुण० ॥ अरि० ॥ ८ ॥

अर्थः-जेम कामकुंभ तथा चिंतामणी रत्न, विनास्वार्थे अन्य जीवोने वांछित फलना दानार

क्रीडाकरतो निमग्न रह्यो तेथी आत्म स्वरूपने भूली शुद्धात्म स्वरूपथी परांङ्गमुख थई अत्यंत दुःखदायक भवसमुद्रमां भ्रमण करावनार ज्ञानावरणीयादि कर्मना आस्त्रव (पांच प्रकारना मिथ्यात्व, बार प्रकारनी अविरती, पचीस कषाय तथा पंदर योग) तथा प्रकृति, स्थिती, अनुभाग अने प्रदेशबंधना हेतु राग द्वेष मोहादि विभाव तरफ में रुचि करी तथा मिथ्याचासमां अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थाने वसतां मिथ्यात्वना आवेशमां सम्यक्दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान, सम्यक्चारित्रमय आत्म स्वरूपने भूली अनेक प्रकारनां कर्म वांधी तेना दुष्ट फलनो भागी थयो अने ते दुष्ट विपाकना अवसरे माहरा पूर्वकृत कर्मनो दोष न विचार्यो, अने " सव्वे पुव्व कयाणं, कम्माणं पावए फल विवागं। अवराहेसु गुणेसु अ, निमित्त मित्तं परो होइ " आ अमूल्य जिनवचननुं विस्मरण करी अमुके मने क्रोध उपजाव्यो, मानमां पाड्यो, माया तथा लोभमां प्रवृत्त कर्यो तथा शोक, भय, अरति, जुगुप्सा विगेरे कषायो उपजाव्या एम कही परने दोष दीधो. श्वान जेम लाकडी मारनारने नहीं पण लाकडीने करडवा तथा भसवा मांडे छे तेम में पण मारा

पूर्वकृत दुष्ट कर्म तरफ लक्ष नहि देतां निमित्तमात्र जे परद्रव्य तेने दोष दीधो अने हाल पण तेमज वर्त्तुंछुं "जो कर्त्ता सो भोक्ता," एवा जग-जाहेर तथा सर्वमान्य जिनेश्वरना वचननो निरादर कर्यो, ॥ २ ॥

अवगुण ढांकण काज करूं जिन मत क्रिया,
न तजुं अवगुण चाल अनादिनी जे प्रियाः
दृष्टि रागनो पोष तेह समकीत गणुं, स्याद्-
वादनी रीत न देखुं निजपणुं ॥ ३ ॥

अर्थः-अनादिथी अज्ञान वशे प्रिय थइ पडेली, कुदेव, कुगुरु अने कुधर्मने सन्मानवा आदरवा रूप मिथ्यात्व अज्ञाननी तथा क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा तथा वेदराग विगेरेनी दुष्ट चाल प्रकृतिनो तो त्याग करयो नहि अने कदाच श्री जिनेश्वरे बतावेली सामायिक, पोसह, प्रतिक्रमण, वंदन, स्तवन, पूजा विगेरे क्रियाओ, अपमान निंदा तथा दुराचरण ढां-

नाय, धम्मोपदेशो जन रंजनाय " एम विष गरल अने अन्योन्यानुष्टान सेवतां संसारीक दुःख- थी मारी निवृत्ति थइ नहि. कारण के " निच्चुन्नो तंबोलो, पासेण विणा न होइ जह रंगो; तह दाण सील तव भावणाओ अहलाओ भाव विणा " जेम चुना विना तांबूल, अने पास विना वस्त्र रंग पामे नहीं तथा जेम अंक विना मींडां निष्फल थाय तेम शुद्धात्म भाव रहित दान, शील, तप अने भावना संसारथी मुक्त करी शके नहीं. जल विना जेम सरोवर, सुगंधी विना जेम कमल, चंद्रमा विना जेम रात्री, सूर्य विना जेम दिवस, तथा जीव विना जेम शरीर शोभा पामतां नथी; तेम भाव वगर साध्य निरपेक्ष क्रियाओ शोभा पा- मती नथी. पण जो ते आवश्यक आदि करणीओ भावपूर्वक करवामां आवे तो ते मोक्षनुं कारण थाय. जेम अंक सहितनां मींडां दशगुणी संख्या वधारनार थाय छे. माटे भावनुं स्वरूप जाणवुं जोईए. " उवओगो भाव इति " अर्थात् सूत्रनी साखे वीतरागनी आज्ञाए ज्ञान पूर्वक हेय उपादे- यनी परीक्षा करी अजीव तत्त्व तथा आस्रव तत्त्व

तथा बंध तत्त्व ऊपर त्याग भाव अने जीवना गुण जे संवर, निर्जरा, मोक्ष तत्त्व ऊपर उपादेय परिणाम ते भाव छे. माटे शुद्धात्म भाव सन्मुख अर्थात् आपणा आत्माने राग, द्वेष, मोहथी मात्र निवृत्त करवाना परिणाम सहित जो आवश्यकादि करणीओ करवामां आवे तो ते अवश्य मोक्षनुं कारण थाय. वली "सम्मत्तेणं सुद्धो, सच्चसु किच्चो हवइ सिव हेऊ, संवर वुड्ढी तह निज्जराय धम्म मूलं च सम्मत्त ॥" तथा "मूलं दारं पइठाणं, आहारो भायणं निहि; दुसुक्कं साविधम्मस्स सम्मत्तं परिकि यं ॥" शुद्ध समकित तेज शिवनो हेतु, तथा संवरनी वृद्धि करनार, निर्जरानुं कारण होवाथी सर्व धर्मनुं मूल, तथा मोक्ष महेलमां प्रवेश करवा माटे द्वार समान, चारित्र महेलनी पीठिका, तथा रत्नत्रयना भाजन रूप छे. एहवां आपनां पवित्र वचनो वांची सांभली में समकितने अमूल्य रत्न समान तो जाण्युं पण हे भगवंत ! आप तो "नय भंग पमाणेहिं, जो अप्पा सायवाय भावेण, जाणइ मोरक सरूवं, सम्मदिठिउ सो नेओ" नय भंग पक्ष प्रमाण

सहित स्याद्वादनये जीवादि तत्त्वने यथार्थ जाणे छे तेमज श्रद्धा करे छे तथा हेयने त्याग करवानी तथा उपादेय भावने आदरवानी रुचि होय तेने समकीती कह्यो छो. पण ते प्रमाणे तो में स्याद्वाद-नये आत्म तत्त्वनुं स्वरूप यथार्थ जाण्युं, सद्दह्युं नहि तथा समकितना जे सडसठ (चार सद्दहणा, त्रण लिंग, दश प्रकारे विनय, त्रण शुद्धि, पांच दूषणनो नाश, आठ प्रकारे प्रभाविक पणुं, पांच भूषण, पांच लक्षण, छ यतना, छ आगार, छ भा-वना तथासमकितनां छ स्थानक) बोल आपे कह्या छे ते जाण्या शिवाय तथा जे होवा जोइए तेनी मारामां प्रगटता थइ छे के नहि, तेनो विचार कर्या विना, समकीतना लक्षणोनी प्राप्ति विना, मात्र दृष्टीरागना पोषने अर्थात् नय, निक्षेप, पक्ष, प्रमाण वडे परीक्षा कर्या शिवाय कुलक्रमानुगत देव गुरु धर्मनी द्रव्यपरंपराय श्रद्धाने समकित गणी क्रियानुष्ठान सेव्यां पण निश्चय समकीत विना मने मोक्ष फलनी प्राप्ति थइ नहि. ॥ ३ ॥

मन तनु चपल स्वभाव वचन एकांतता,
वस्तु अनंत स्वभाव न भासे जे छता । जे
लोकोत्तर देव नमुं लौकीकथी, दुर्लभ सिद्ध

स्वभाव प्रभो तहकीकथी ॥ ४ ॥

अर्थः-जेम पुंगीना स्वरमां लीन थइ नाग पोताना मस्तकने पुंगी प्रमाणे डोलावे छे. तेम हुं पण पांच इंद्रियोना विषयोमां लीन थइ माहरा आत्म परिणामने चपल करी कर्मजालमां फसायो "चलइ फंदइ" तथा मिथ्यात्वना आवेशमां अनंत धर्मात्मक वस्तुमांथी कोइक धर्मने मुख्यतया वखाणतां बाकीना धर्मोनी गौणपणे पण अपेक्षा नहि राखवा रूप एकांत वचन अर्थात् दुर्नयने ग्रहण कर्यो, ते प्रमाणे में वस्तु स्वरूप सद्दह्युं तथा बीजाने पण तेमज एकांते उपदेश आप्यो "दो-हिंवि णयेहिं णीयं सत्थं मूलण तहवि मिच्छत्तं; जस्स विसयप्पहाणं, तणेणं अणुपणा निरवेरकं" इति विशेषावश्यके-पण अनंत धर्मात्मक वस्तु स्वरूपने में यथार्थ जाण्युं नहि "अभिलाप्ये भावेभ्यः अनभिलाप्या अनंत गुणा" एम अनंत गुण पर्यायनो भाजन ते द्रव्य-वस्तु छे माटे दरेक वस्तुमां अनंत भाव छता छे-मालिनिछंद-

"बहु विह नय भंगं, वच्छु णिच्चं अणिच्चं।

सद सदनाभिलप्पं, लप्पमेगं अणेगं" ते में एकांत-मिथ्यात्व वशे न जाण्या-एम मिथ्यात्व भावमां फसी रह्यो अने तेथी इंद्रगणे वंदित, त्रिलोक पूज्य जे लोकोत्तर अरिहंत देव तेओने लौकीक रीते अर्थात् अज्ञान अने राग सहित, परभावना कर्त्ता हर्त्ता जाणी आलोक परलोक संबंधी विषयोनी प्राप्ति अर्थे, तथा मान पूजा आदि अर्थे नमुं छुं-वंदन स्तवन पूजा प्रमुख करूं छुं पण तेथी जिनेश्वरे बतावेलो जे अत्यंत दुर्लभ सिद्ध स्वभाव तेनी प्राप्ति केम थाय ? ॥ ४ ॥

महाविदेह मझार के तारक जिनवरु, श्री वज्रंधर अरिहंत अनंत गुणाकरू । ते निर्यामक श्रेष्ट सही मुज तारशे, महा वैद्य गुणयोग रोग भव वारशे ॥ ५ ॥

अर्थः-महाविदेह क्षेत्रमां विचरता आ भीम भवार्णवमांथी भव्य समूहनो उद्धार करनार, सर्वे केवलीओमां इंद्र समान, शिरोमणी, ज्ञानादि अनंत गुणना आकर-निधान हे वज्रंधर अरिहंत ! आप, चरण जहाजने चलावनाराओमां अग्रेसर-प्रधान सर्वोत्तम निर्यामक होवाथी आ भयंकर भवाब्धि-

मांथी निःसंदेह अति त्वराए माहरो उद्धार करशो तथा महावैद्यरूप थइ माहरा आत्म परिणाममां सम्यक्‌दर्शन ज्ञान चारित्रनो योग करी मिथ्या आचरण वडे उपजेला भवरोगनो वेगे समूल विनाश करशो एवी माहरा चित्तने दृढ प्रतित छे. ॥ ५ ॥

प्रभु मुख भव्य स्वभाव सुणुं जो. माहरो,
तो पामे प्रमोद एह चेतन खरो। थाये
शिवपद आश राशि सुख वृंदनी, सहज
स्वतंत्र स्वरूप खाण आणंदनी ॥ ६ ॥

अर्थः—“ भवन व्यय विणु कार्य न निपजे हो, जिम दृशदे न घटत्व ” तेमज जेमां भव्य अर्थात् पलटन स्वभाव नथी एटले जे जीवमां मिथ्यात्वथी पलटी समकीत भावे परिणमवानुं सामर्थ्य नथी तेने अभव्य कहाए तथा अविरतीथी पलटी विरतीभावे परिणमवानुं सामर्थ्य नथी तथा प्रमाद भावथी पलटी अप्रमाद भावे पलटवानुं सामर्थ्य नथी, तथा कषाय भावथी पलटी अकषाय (शम) भावे परिणमवानु सामर्थ्य नथी (एटले पूर्व अहितकारी) पर्यायनो व्यय, नवा प्रशस्त

भाववडे " हुं भव्य हुं " एवु अनुमान थायछे तो पण हे सर्वज्ञ देव ! आपना मुखारविंदथी " तुं भव्य छुं " एवुं वचन सांभळुं, तो माहरा भव्यत्वनी मने संपूर्ण पणे प्रतीत थाय अने सहज स्वतंत्र सच्चिदानंदमय अनंत सुख समूहरूप शिवपदप्राप्तिनो भरोसो थाय ॥ ६ ॥

वलग्या जे प्रभु नाम धाम ते गुण तणा, धारो चेतन राम एह थिर वासना ॥ देवचंद्र जिनचंद्र हृदय स्थिर थापजो, जिन आणा युत भक्ति शक्ति मुज आपजो ॥ ७ ॥

अर्थः-हे भगवंत ! जे पुरुषो आपना स्मरण, कीर्त्तन, भक्ति विगेरेमां लीन छे तेज पुरुषो गुणना धाम कहेतां भाजन छे. माटे हे चेतनराम ! निरंतर प्रभुना स्मरणमां थिर वासकर, एक पण समय प्रभुपदने विसार नहि. देवचंद्र मुनि कहे छे हे जिनेश्वर देव ! मने लब्धि वीर्यनुं दान करी आपनी आज्ञा प्रमाणे आपनी भक्ति करवानी मने शक्ति आपो कारण के आपनी आज्ञाथी विपरीतपणे करेतां सर्व क्रिया अनुष्टान निष्फल छे. " जो कोइ आणा रहिओ, पूआ पमुहं करेइ तिकालं ।

तम्मावि सव्वस सुद्धं, आणाचउज्जं अणुट्ठाणं ॥"

जे कोइ पुरुष आज्ञा रहित पणे त्रणे काल पूजा प्रमुख करणी करे तो पण आणा रहित होवाथी तेनुं सर्व अनुष्ठान अशुद्ध जाणवुं. " जहतुस खंडण मय मंडणाइ रूणणाइ सुन्न रन्नंमि ॥ विहलाइ तह जाणसु, आणा रहियं अणुट्ठाणं " जेम तुस-कुसकानुं खांडवुं, मुडदाने शणगारवुं तथा सुना वगडामां विलाप करवो निष्फल छे तेम जिन आज्ञा वगरनुं अनुष्ठान पण निष्फल जाणवुं. " जह भोयण मविहिकयं, विणासए विहिकयं जियावेई; तह अविहिकओ धम्मो, देइ भवं विहिकओ मुक्खं " जेम अविधिए करेलुं भोजन विनाश करे तथा विधिए करेलुं भोजन जीवन आपे तेमज अविधिए आदरेलो धर्म भवभ्रमण आपे अने विधिए आदरेलो धर्म मोक्ष सुख आपे; माटे आपनी आज्ञानुं ज्ञान तथा ते आज्ञामां वसवा रूप सदाचरण ए बंनेनुं हे करुणानिधान! मने दान आपो. ॥ ८ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ श्री द्वादशम श्री चंद्रानन जिन स्तवनम् ॥

॥ वीराचांदला ए देशी ॥

चंद्रानन जिन सांभलिये अरदासरे, मुज सेवक भणी. छे प्रभुनो विश्वासरे चंद्रानन जिन ॥ १ ॥

अर्थः-हे भगवंत ! आप पी तेमज अरूपी निकटवर्त्ती तेमज दूरवर्त्ती, सूक्ष्म तेमज स्थूल, सर्वे पदार्थोने तेना त्रैकालिक गुण पर्याय सहित एक समयमां हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जाणनार होवाथी सर्वज्ञ, तथा अनंत आनंदमां पोताना गुणपर्या-योमां निरंतर तल्लीन-स्थिर होवाथी अन्य कोइपण द्रव्य पर्यायमां आपनो राग द्वेषरूप परिणाम थतो नथी तेथी वीतराग छो, अने सर्वज्ञ तथा वीतराग होवाथी आपनी दिव्य वाणीमां प्रत्यक्ष परोक्षादि कोईपण प्रमाणवडे विसंवाद आवी शकतो नथी, कोईपण प्रकारना रंचमात्रपण दूषणने अवकाश मलतो नथी; माटे हे प्रभु ! आपज आ भीषण भवसमुद्रमांथी भव्य समूहने उद्धारवा समर्थ छो. पण आपथी विमुख बुध कपिलादि अन्य तीर्थीओ के जे तेओनां आचरण तथा वाणीवडे अज्ञान तथा

राग द्वेषादि दूषणोथी युक्त भरपूर कलंकित प्रतीत थाय छे, भवसमुद्रमां निमग्न जणाय छे, अने तेथी तेओना वचनमां प्रत्यक्ष परोक्षादि प्रमाणवडे अनेक दूषणो दृष्टिगोचर थाय छे, तेओ भवसमुद्रमांथी केम उद्धारी शके ? " जे नवि भव तर्या निर्गुणी तारशे किणपेरे तेहरे " माटे पोते बुडनार तथा आश्रितने बुडावनार पत्थरनी नावनो केम विश्वास राखाय ? तेथी हे त्रिलोक पूज्य ! आ भवसमुद्रमांथी मुक्त थवा माटे हुं सेवकने आपनोज विश्वास-आधार छे, माटे समतारूप अमृत समुद्रने वृद्धिगत करनार, तथा भव्यरूप कुमुद समूहने विकस्वर करनार, तथा कषाय तापने समाववामां, आत्मवीर्यनी वृद्धि करवामां समर्थ एवी तत्त्वोपदेशरूप निर्मल चांदनीने आ भूमंडलमां फेलावनार हे जगत् चूडामणि चंद्रानन जिनेश्वर ! अज्ञान तथा कषाय जन्य दुःखथी भयभीत थएलो हुं भवभीरु आप प्रति विनंती करूं छु ते कृपाकरी सांभलो-अवधारो.

भरतक्षेत्र मानवपणोरे, लाध्यो दुःसम काल ॥
जिन पूरवधर विरहथीरे, दुलहो साधन चालोरे ॥ चंद्रानन० ॥ २ ॥

अर्थः-मेरुपर्वत जेटला राइना ढगलामां पडी गयेलो सरसवनो दाणो मली शकवो जेम अत्यंत मश्कल छे तेमज मनुष्य भव पण आ भवसमुद्रमां भ्रमण करतां पामवो अत्यंत दुर्लभ छे तेम छतां कदाच मनुष्य भवनी प्राप्ति थाय तो, आर्यक्षेत्र, लांबु आयुष्य, नीरोगता, उच्चकुल विगेरे उत्तरोत्तर अतिशय दुःप्राप्य छे छतां ते सर्व सामग्रीओ कोई माहरा महत् पुण्य प्रसादे आ दुःषमकालमां (पांचमा आरामां) हे चंद्रानन प्रभु ! मने प्राप्त थइ पण केवलज्ञानी, चौद पूर्वधर, दश पूर्वधर, तथा प्रत्येक बुध के जेओ तत्त्वना यथार्थ ज्ञाता उपदेष्टा छे, जेनां वचनो प्रमाण भूत छे, निशंकपणे विश्वास पात्र छे, जेना वचनानुसारे सर्वेनां वचनो परखी शकाय छे, एवा गुण समुद्र पूज्य पुरुषोना वियोग वडे सहजानंदरूप मोक्षपद साधवानो साचो मार्ग अतिशय दुर्लभ थइ पड्यो छे. ॥ २ ॥

द्रव्य क्रिया रुचि जीवडा रे, भाव धर्म रुचि हीन ॥ उपदेशक पण तेहवा रे, शुं करे जीव नवीनरे ॥ चंद्रानन० ॥ ३ ॥

अर्थः-हे भव्यो! अनादिकालथी आपणो आत्मा जे अज्ञान, मिथ्यात्व, अने कषाय वडे मलीन होवा-

थी आ भयानक भवसमुद्रमां भ्रमण करतां जन्म जरा मरण रोग शोक वियोग ताडन तर्जन आदि अनेक प्रकारनां शारीरिक तेमज मानसिक दुःखो सहन करे छे, पोतानी अनंत आनंदमय दशाथी दूरवर्त्ती थइ रह्यो छे, तेथी अज्ञान मिथ्यात्व अने कषायादि दूषणोथी मुक्त करी, अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय परम निर्मल शुद्ध सिद्ध पदमां विराजमान करवो अर्थात् पूर्ण शुद्धात्म भाव प्रगट करवो-प्राप्त करवो, एज आपणुं परम कर्त्तव्य छे तथा एज आपणुं सर्वोत्कृष्ट अनंत सुखप्रद अविनश्वर साध्य छे. पण मोहनिय कर्मना प्रबल उदय वडे पोताना सर्वोत्कृष्ट साध्य साधवानी रुचिथी पराङ्मुखपणे धर्मनुं मूल जे समकीत (सम्मत्तेणं सुध्धो, सच्चसु किच्चो हवइ सिवहेउ, संवर वुड्ढी तह निज्जरा य धम्म मूलं च सम्मत्तं) ते प्राप्त कर्या वगर पोताना दुष्कृतो ढांकवा माटे, अथवा मान पूजाने अर्थे, अथवा आ भव संबंधी कामभोगना पदार्थो मेलववा माटे, अथवा देवादिक गतिना मनोहर विपुल भोगो प्राप्त थवा माटे घणा जीवो सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चखाण, तथा समिति परिसहसहनादि अनेक द्रव्य क्रियाओ रुचि सहित

आदरे छे पण हे भगवंत ! ते सर्वे क्रियाओ शुद्ध साध्य निरपेक्ष अर्थात् परमार्थ विमुख होवाथी विष, गरल, तथा अन्यानुष्टान रूपे आस्रव हेतु थइ पडे छे. यदुक्तं श्री आचारांग सूत्रे "जे आसवा ते परिस्रवा, जे परिसवा ते आसवा" माटे ते बालकनी क्रियावत् निर्वाण पद आपवाने असमर्थ छे, उक्तंच परमट्ठम्मिदुअठिदो जो कुणइ तवं वयंच धारेइ, तं सव्वं बाल तवं, बालवयं विंति सव्वण्हू॥ वयणियमाणि धरंता, सीलाणि तहा तवंच कुव्वंता। परमट्ठ बाहिरा जे, निव्वाणं तेण विंदंति ॥ तथा उपदेश मालायाम्-संसार सागर म्मिणं, परिभमं-तेहि सव्व जीवेहिं । गहियाणि अ मुक्काणिय, अणंतसो दव्व लिंगाइं-अर्थः-अरे आ संसार समुद्रमां परिभ्रमण करतां जीवोए द्रव्यलिंग अनंतीवार ग्रहण कर्या छोड्या पण ते द्रव्यलिंग, समकित रहित तथा साध्य निरपेक्ष होवाथी सिद्धिना हेतु थइ शक्या नहि. जेम घटनो इच्छुक कोइ कुंभार घट उत्पन्न करवानां साधनो जे दंड चक्रादि तेनो रात दिवस निरंतर घणो व्यापार करे पण साध्य जे घट ते सिद्ध करवा तरफ जो लक्ष आपे नहि

अर्थात् माटीने चक्र ऊपर मूकी तेमांथी स्थास कुशल कुम्भादि पर्यायो निपजावे नहि तो कोइ पण काले घट सिद्ध थाय नहि. पण जो ते घट सिद्ध करवा तरफ लक्ष स्थापी स्थास कुशल कुम्भादि पर्यायो उपजाववामां दंड चक्रादिनो योग्य व्यापार करे तो अवश्य घट सिद्धि करी शके अने त्यारेज तेनो दंड चक्रादिनो सर्व व्यापार सफल कहेवाय तेमज भवभ्रमणथी उद्विग्न थएल भव्य जीव शुद्धात्म भाव सिद्ध करवानी रुचि धरी ते तरफ पुरतो लक्ष आपी गुणस्थान प्रमाणे योग्य व्यवहार आदरे अर्थात् प्रथम समकीत गुण प्राप्त करवानो व्यवहार आदरे कारण के ते मोक्षनुं प्रथम पगथीउं छे "जिन पणत्तं धम्मं, सद्दहमाणस्स होई रयण त्तियं ॥ सारं गुण रयणाणय, सोवाणं पढम मोरकस्स" पछी देश विरति सर्वविरती थवानो व्यवहार आदरे, पछी अप्रमत्तादि गुण स्थान प्राप्त थवानो योग्य (आगम प्रणीत) व्यवहार आदरे तो केवलज्ञानादि अनुपम लक्ष्मीनो स्वामी थाय, पोतानुं अजर अमर शुद्धात्म (निर्वाण) पद प्राप्त करे. अने तेम करतां तेनो व्रत तप पच्चखाण प्रति-क्रमणादि सर्वे व्यवहार सफल कल्याणकारी कहे-

थाय, पण हे चंद्रानन प्रभु ! अनादि कालथी पुद्गल द्रव्यना गुण पर्यायोने अनुभवता, तेमांज तल्लीन थएला संसारी जीवोने सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र रूप भावधर्मनी रुचि क्यांथी थाय ? जो कदाच एम पोतानी मेले थवी मुश्केल तो सद्गुरुना उपदेश वडे पण थइ शके पण आ निकृष्ट पंचम आरामां भावधर्मनां स्थापन करनार परमोपकारी सद्गुरुनी अतिशय विरलता अने भावधर्म एक कोरे मूकी साध्य शून्य द्रव्यक्रियामां लगाडनार उपदेशको घणा. ए विषे न्याय विशारद श्रीमद् यशोविजयजी कहे छे–" ज्ञान दर्शन चरण गुण विना, जे करावे कुलाचाररे, लुंटीया तेणे जन देखतां, किहां करे लोक पोकाररे ॥ काम कुंभादिक अधिकनुं, धर्मनुं को नवि मूलरे, दोकडे कुगुरु ते दाखवे, शुं थयुं एह जग शूलरे ॥ अर्थनी देशना जे दिये, ओलवे धर्मना ग्रंथरे; परम पदनो प्रगट चोरथी; तेहथी केम वहे पंथरे ॥ विषय रसमां गृही माचीया, नाचीया कुगुरु मद पूररे; धूम धामे धमाधम चली, ज्ञान मारग रह्यो दूररे ॥ कलहकारी कदाग्रह भर्या, थापता आपणा बोलरे; जिन वचन अन्यथा दाखवे, आज तो वाजते ढोलरे ॥ केइ निज दोषने

बहु शिष्ये परिवरिओ; तिम तिम जिनशासननो वैरी; जो नवि निश्चय दरियोरे–तथा उपदेश मालायाम्: " जह जह बहु सुअसमओ, सीस गण संपरिवुद्धोय; अविणीाच्छिओ असमए, तह तह सिद्धंत पडिणीओ. "

आणा साध्य विना क्रियारे, लोके मान्यो रे धर्म । दर्शन ज्ञान चरित्तनोरे, मूल न जाणयो मर्मरे ॥ चंद्रानन० ॥ ५ ॥

अर्थ:–दर्शन ज्ञान चारित्रनो मूल मर्म जाण्यो नहि अर्थात् सत्ताए अनंत ज्ञान दर्शन चारित्र मय सिद्ध समान सर्व जीवो छे, पण अनादिथी कर्म मल संबंधे अशुद्ध होवाथी ज्ञान दर्शन अने चारित्र रूप शुद्धात्म स्वभावथी विपरीतपणे मिथ्यात्व, अज्ञान, अने कषाय रूप परिणमे छे, पोताना आत्मवीर्यने तेमां वापरे छे अने तेथी निरंतर सात आठ प्रकारनां कर्म बांधी भवसमुद्रमां परिभ्रमण करतां अनेक प्रकारनी शारीरिक तथा मानसिक असह्य वेदनाओ भोगवे छे. पण ते मिथ्यात्व, अज्ञान, अने कषायने तीव्र दुःख दातार तथा अखूट सहजानंद

लूंटनार महान् शत्रुओ जाणी तेमां पोताना आत्मवीर्यने नहि वापरतां जीवादि तत्त्वोना यथार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्दर्शन, तथा ते जीवादि तत्त्वोने नयनिक्षेप पक्ष प्रमाणादि सहित संशय, विभ्रम अने विमोह रहित श्रद्धान पूर्वक जाणवा रूप सम्यक्ज्ञान, तथा रागादिक कषाय अने सावद्य योगना परिहार रूप सम्यक्चारित्रमां प्रयुंजो संसार समुद्रथी आपणा आत्मानो उद्धार करवो. यतः-

गाथाः-जीवादी सद्दहणं, सम्मत्तं तेसि मधिगमो णाणं; रागादी परिहणं, चरणं एसो दु मोक्खपहो) दश द्रष्टांते दुर्लभ, रत्न चिंतामणी समान मनुष्य भव त्यारेज सफल जाणवो. कारणके पंचेंद्रिओना विषय भोग तो देवादि गतिमां मली शके छे पण परमात्मपद-मोक्षपद तो आ मनुष्य भवमांज साधी शकाय छे. माटे आपणा

आज्ञा छे- " मोरक पहे अप्पाणं, ववेंहि तं चेव झाहि तं चेय, तत्थेव विहर णिच्चं, मा विहरसु अण दव्वेसु " हे भव्य ! तुं मोक्षमार्ग-मां पोताना आत्माने स्थाप, तेज परमात्मपदनुं ध्यान कर, तेज परमात्म पदने अनुभवगोचर कर, अने तेज परमात्म भावमां निरंतर विहार कर, अन्य द्रव्य पर्यायमां विहार करीश नहि, तेमां इष्टानिष्ट बुद्धि वा राग द्वेष रूप परिणाम करीश नहि अर्थात् सर्वदा प्रमाद तजी परमात्मपदनी साधनामां मग्न था.

पण हे चंद्रानन प्रभु ! आ दुःषमकालमां ते परमात्म पदनुं यथार्थ स्वरूप जाण्यावगर तथा तेनी साधनारूप जिनेश्वरनी आज्ञानी अपेक्षा तरफ लक्ष राख्या शिवाय अनेक प्रकारनी बाह्य क्रियाओनेज धर्म मानी लीधो, तेमांज रत थया, तेज करी पोताने कृतार्थ समज्या अर्थात् बाह्य निमित्तने कार्य मानी साचा कार्यथी विमुख थई रह्या, पण जिनेश्वरनी आज्ञाथी विमुखपणे वर्त्ततां सिद्धि थाय नहि. कारणके जिनेश्वरनी आज्ञानी अपेक्षा वगरनां सर्व क्रियानुष्टान निरर्थक छे-श्रीमद् अभयदेव सूरि

कहे छे-" संजम रहियं लिंगं, दंसण भट्ठं न संजमं भणियं, आणा हीणं धम्मं, निरत्थयं होइ सव्वंपि" तथा " जो पूइज्जइ देवो, तव्वयणं जे नरा विराहंति; हारंति बोहि लाभं, कुदिट्ठि राएण अन्नाणी" तथा " पूआ पच्चरकाणं, पोसह उववास दाण सीलाइ; सव्वंपि अणुट्ठाणं, निरत्थयं कणय कुसुमव्व " तथा श्री धर्मदास गणी उपदेशमालामां कहे छे. " आणाइच्चिय चरणं, तब्भंगे जाण किन्न भग्गंति, आण च अइक्कंतो, कस्साएसा कुणइ सेसं; निश्चये आज्ञा एज चारित्र छे अर्थात् जिनाज्ञानुं पालवुं एज चारित्र छे. तो जेणे जिनेश्वरनी आज्ञा भांगी तेणे शुं न भांग्युं ? हे प्राणी, जो तुं जिनेश्वरनी आज्ञाने उलंघन करे छे तो तुं कोना आदेशथी क्रियानुष्टान करे छे ? तथा उपदेश सिद्धांत रत्नमालायाम्-" जगगुरु जिणस्स वयणं, सयलाण जियाण होइ हिय करणं; ता तस्स विराहणया, कह धम्मो कहणु जीवदया " जगत्गुरु श्री जिनेश्वरनुं वचन सर्व जीवोने हित करनार छे तो ते वचनने विराधतां केवो धर्म अने केवी जीव दया ? ॥ ५ ॥

गच्छ कदाग्रह साचवेरे, माने धर्म प्रसिद्ध;

आतम गुण अकषायतारे धर्म न जाणे शुद्धरे ॥ चंद्रानन० ॥ ६ ॥

अर्थः-सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्र-रूप शुद्धात्म गुणनो, क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषायो वडे घात न करवो, अकषाय भावमां, शुद्ध परिणामीक भावमां वर्त्तवुं तेज साचो धर्म छे. कारणके "वत्थु सहावो धम्मो" एवुं श्री जिनेश्वरनुं पवित्र वचन छे-तथा ते कषायोज कर्मबंधना हेतु छे. "जोग निमित्तं गहणं, जोगो मण वयण काय संभूदो; भाव निमित्तो बंधो, भावो रदि राग दोस मोह जुदो" तथा अकषायमां वर्त्ततो-पोताना ज्ञानादि भाव प्राणोनी रक्षा करनारो ज्ञानी अप्रमादी मुनि पोताना तथा परना द्रव्यभाव प्राणनो हिंसक केम थाय ? अने जे अशुद्ध अध्यवसायमां वर्त्ते छे ते हिंसा नहि करता छतां पण हिंसक छे. यतः-"अहणंतो विहु हिंसो, दुट्ठतणुओ मओ अहिमरोव्व, बाहिंतो नवि हिंसो, शुद्ध तणुओ जहा विज्जो" माटे अकषायमां वर्त्तवुं तथा अहिंसामां वर्त्तवुं ए बेनी परमार्थे एकताज छे. अने

अहिंसा धर्मनुं पालन करनार सर्व धर्मनुं पालन करनार छे, कारण के सर्व महाव्रतो, तथा क्षमादिक दश धर्मो, तथा परिसह सहन, तथा तप, संयम विगेरे सर्व धर्मो अहिंसानाज अंग छे, तेनाज कारणो छे, माटे सर्व धर्मोनो अहिंसामां समावेश थाय छे.

" सव्वाओवि नइओ, जह सायरंमि निवडंति; तह भगवई अहिंसिं, सव्वे धम्मा समिल्लन्ति, " तथा वली " अहिंसा सर्व जीवानाम्, सर्वज्ञैः परिभाषिता, इदं हि मूलं धर्मस्य, शेषस्तस्यास्ति विस्तरः " माटे अकषायमां वर्त्ततो मुनि, नवा कर्मबंधने अटकावतो, पूर्व बांधेला कर्मनी निर्जरा करतो, जन्म मरणादि दुःखनो क्षय करी परमानंदपदने-मोक्षपदने प्राप्त करे छे. यदुक्तं—आचारांग सूत्रे त्रीजा अध्ययने " जे क्रोधने छोडे छे ते मानने छोडे छे; जे मानने छोडे छे ते मायाने छोडे छे; जे मायाने छोडे छे ते लोभने छोडे छे; जे लोभने छोडे छे ते रागने छोडे छे; जे रागने छोडे छे ते द्वेषने छोडे छे; जे द्वेषने छोडे छे ते मोहने छोडे छे; जे मोहने छोडे छे ते गर्भथी मुक्त थाय छे; जे गर्भथी मुक्त थाय छे ते जन्मथी मुक्त थाय छे; जे जन्मथी मुक्त थाय

छे ते मरणथी मुक्त थाय छे; जे मरणथी मुक्त थाय छे ते नरकथी मुक्त थाय छे; जे नरकथी मुक्त थाय छे ते तिर्यंच गतिथी मुक्त थाय छे; जे तिर्यच गतिथी मुक्त थाय छे ते दुःखथी मुक्त थाय छे" एहवा अकषायरूप शुद्ध धर्मने नहि जाणनारा, तेनी अपेक्षा नहि राखनारा, एकांते बाह्य क्रियानी हठ धरनारा पुरुषो मात्र बाह्य क्रियानेज मोक्षनुं कारण मानी, पोताना गच्छ प्रमाणे वर्त्ती ते बाह्य क्रियानेज परमार्थ ठरावबा प्रयत्न करे अने कहे के आवुं पात्र, वा आवीं मुहपत्ती, विगेरे राखवां अने आवीज रीते प्रतिक्रमणादि क्रिया करवी तेज मोक्षनुं कारण छे. अमाराथी प्रकारांतरे जे उपकरणो तथा प्रतिक्रमणादि बाह्य क्रियाओ आदरे छे ते मोक्ष पामी शके नहि. एम पोते आदरेल बाह्य लिंगने तथा बाह्य करणीने परमार्थे मोक्षनुं कारण मानी अमे साचो धर्म आराधीए छिये, अमारो धर्म प्रशंसनीय छे, एम जे पोतानी जीव्हाग्रे जल्पे छे अने ते माटे लांबा लांबा वितंडावादो मांडी बेसे छे, समतारूप अमृतने तजी कषायरूप हालाहल विषने भक्षण करे छे; एहवा एकांतवादी पुरुषोनो दुराग्रह नाश करवा माटे श्री जिनेश्वर प्रणीत शुद्धा-

गमनुं रहस्य प्रगट करता श्री म
अध्यात्मसारमां कहे छे.–" अतो
स्तद्भावे कृतार्थता; पाखंडीगण लिं
गैश्च कापिन । पाखंडी गण लिंगेषु,
रताः; न ते समयसारस्य, ज्ञातार
भाव लिंग रतायेषु, सर्वसार विदो
वा गृहस्था वा; सिध्यन्ति धूत क
लिंगं हि मोक्षांगं, द्रव्यलिंग मकारणं;
तिकं यस्मान्नाप्येकांतिक मिष्यते । " =
दिगम्बर आचार्य श्री कुंदकुंदाचार्य स
कहे छे–गाथा–

" पाखंडी लिंगेषु व, गिहिलिंगेसुव
यारेसु; कुव्वंति जे ममत्तं, तेहि ण
समयसारं–णवि एस मोरकमग्गो, प
गिहि मयाणि लिंगाणि; दंसण णाण चार
णि मोरक मग्गं जिणा विंति " अर्थः–पार

साधुलिंगमां वा गृहस्थ लिंगमां वा बहु प्रकार
लिंगमां जे ममत्व करे छे ते समय सारने जाणत
नथी. पाखंडीसाधुनो लिंग, वा गृहस्थनो लिंग
विगेरे मोक्ष मार्ग नथी पण श्रीजिनेश्वर सम्यक्-

दर्शन ज्ञान चारित्रने मोक्षनो मार्ग कहे छे–" तह्मा जहित्तु लिंग, सागार अणगारएहि वा गहिए, दंसणणाण चरित्ते, अप्पाणं जुज मोरकपहे "

अर्थः–ते माटे सागार अने अणगारना लिंगनुं ममत्व तजी, पक्षपात तजी, दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मोक्षमार्गमां आत्माने लगाव–जोड. तेमज वली श्री अमृतचंद्राचार्य कहे छे. " येत्वेनं परिहृत्य संवृति पथ, प्रस्थापि तेनात्मना; लिंगे द्रव्यमये वहन्ति ममतां, तत्वावबोध च्युताः। नित्योद्योत मखंड मेक मतुला, लोकं स्वभाव प्रभा, प्राग्भारं समयस्य सार ममलं, नाद्यापि पश्यन्ति ते ॥ "

अर्थः–जे पुरुषो परमार्थ स्वरूप मोक्षमार्गने छोडी बाह्य व्यवहारमां पोताना आत्माने स्थापी द्रव्य लिंगनी ममता धरे छे, तेनेज मोक्षनुं कारण माने छे, ते पुरुषो तत्त्वज्ञानथी विमुख छे वली ते पुरुषो नित्योदित, अखंड, एक, अनुपम, अपराजित, अतुल प्रकाशवंत अने पवित्र परमात्म स्वरूपने अथवा जिनेश्वरना पवित्र समय सारने हजु सुधी पण (मुनीनो वेष धारण कर्या छतां पण) जाणता नथी, प्राप्त थता नथी. माटे एकांत बाह्य क्रियानो

हठ छोडी, परमार्थ समजी, शुद्ध साध्य तरफ लक्ष राखी शुद्धात्म पद जेथी सिद्ध थाय एहवो प्रशस्त व्यवहार आदरी, आपणा आत्माने अत्यंत परमानंदमय परमात्मपदमां स्थित करो ॥ ६ ॥

तत्वरसिक जन थोडलारे, बहुलो जन संवाद ॥ जाणो छो जिनराजजीरे, सघलो एह विवादरे ॥ चंद्रानन० ॥ ७ ॥

अर्थः-हे चंद्रानन प्रभु ! आ दुषमकालमां अमारा भरतक्षेत्रमां सद्गुरुनी विरलता वडे शुद्धात्म तत्त्व साधवाने रसिआ पुरुषोनी संख्या तो रत्न मणिनी पेठे अतिशय अल्प, अने पोतानो मत कदाग्रह स्थापन करवाने तत्पर एहवा काचना कडका जेवा पुरुषो घणा, एवी अमारी दयामणी दशानुं वर्णन हे जिनेश्वर ! आप सर्वथा जाणो छो ॥ ७ ॥

नाथ चरण वंदन तणोरे, मनमां घणो उमंग ॥ पुण्य विना किम पामीएरे, प्रभु सेवननो रंग रे ॥ चंद्रानन० ॥ ८ ॥

अर्थः-देवाधिदेव श्री तीर्थंकरनां चरणकमल के

जे शुद्धात्म अनुभवरूप सुगंधे भरपूर तथा विषय कषायनी चाह दाहने शमन करनार, मोक्ष लक्ष्मीनुं अतिशय प्रिय निवासस्थान छे. तेने वंदन करवानो-पूजवानो भ्रमरनी पेठे तेमां लीन थवानो, माहरा मनमां अतिशय उमेद-उमंग छे पण आ भवचक्रमां भ्रमण करतां अनेकवार मनुष्यभव पाम्यो, पण विषय कषायादिकमां मोहित रही रत्नचिंतामणी समान मनुष्यभव वृथा गुमावी दीधो, पुण्यानुबंधी पुण्यना वियोगे जिनेश्वरनी सेवामां रंग लाग्यो नहि. तल्लीनता थई नहि. करीयातु कडवुं छतां जेम मोंढानी कडवासनो नाश करे छे तेम जिनेश्वरनी लोकोत्तर सेवारूप प्रशस्त राग, ते राग नाश करवानो तथा आत्मगुण प्राप्तिनो हेतु छे. यतः-गाथाः-

" नाणाइसु गुणेसु, अरिहंताइसु धम्म रूवेसु धम्मोवगरण साहम्मीएसु धम्मत्थं जोय गुण-रागो ॥ सो सुपसत्थो रागो, धम्म संयोग कारणो गुण दो, पढमं कायव्वो सो, पत्त गुणे खवइ तं सव्वं ॥ " भावार्थः-ज्ञानादि गुणो ऊपर, अरिहंतादि धर्मात्मा ऊपर, तथा धर्मना साधनो ऊपर, तथा साधर्मी ऊपर गुणावलंबने जे

राग करवो ते प्रशस्त राग, धर्म संयोगनुं तथा गुण प्रगट थवानुं कारण छे. ॥ ८ ॥

जगतारक प्रभु वांदियेरे, महाविदेह मझार ॥
वस्तु धर्म स्याद्‌वादतारे, सुणि करिये नि-
रधार रे ॥ चंद्रानन० ॥ ९ ॥

अर्थः-संसार समुद्रमांथी उद्धारवा माटे समर्थ, महाविदेहमां विचरता श्री चंद्रानन प्रभुनुं निर्मल भावे वंदन करिए. सूत्रमां " वंदननुं फल श्रवण " एम प्रगट वचन छे, माटे भगवंतने वंदन करतां अनंत धर्मात्मक वस्तुनुं स्वरूप स्याद्वादनये सांभलवानो लाभ मले, ते सांभली वस्तु स्वरूपनो निर्धार करी शुद्ध धर्ममां प्रवृत्त थईए. ॥ ९ ॥

तुज करुणा सहु ऊपरे रे, सरखी छे महा-
राय ॥ पण अविराधक जीवनेरे, कारण
सफलु थायरे ॥ चंद्रानन० ॥ १० ॥

अर्थः-हे चंद्रानन प्रभु ! आप राग रूपी समुद्र ने उलंघी गया छो, वीतराग भूमिमां बिराजमान छो तेथी आप तो शत्रुमां तेमज मित्रमां, सेवकमां तेमज असेवकमां, निंदकमां तेमज स्तुतिकारमां

समान वृत्तिवाला छो, सर्वे जीवो ऊपर आपनी करुणा तो हीणाधिकता रहित एक सरखी छे, संसार सुमुद्रथी तारवा माटे सर्वेने एक सरखो उपदेश आपो छो. तो जे जीवो आपनी आज्ञाना विराधक होय ते न तरी शके ते तेमनोज दोष छे. " पत्रं नैव यदा करीर विटपे, दोषो वसंतस्य किम; ने लूकोऽप्यवलोकते, यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणं " पण आपनी आज्ञाना आराधक जीवो आ संसार समुद्रथी तरी शके, आपनुं निमित्त तेओनेज सफल थाय. ॥ १० ॥

एहवा पण भवि जीवनेरे, देव भक्ति आधार ॥ प्रभु समरणथी पामीएरे, देवचंद्र पद सारेरे ॥ चंद्रानन० ॥ ११ ॥

अर्थः—एहवा आराधक भव्य जीवोने पण देवाधिदेव हे चंद्रानन प्रभु ! आपनी भक्तिनोज आधार छे, संसार समुद्रमांथी तरवामां प्रवहण समान पुष्ट अवलंबन छे. माटे हे प्रभु ! देवमां चंद्रमा समान सर्वोत्कृष्ट परमात्मपद, आपना गुणनुं स्मरण तथा ध्यान करवाथी प्राप्त थशे ॥ ११ ॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ त्रयोदशम चंद्रबाहु जिन स्तवनम् ॥

॥ श्री अरनाथ उपासना ॥ ए राग ॥

॥ चंद्रबाहु जिन सेवना, भव नाशिनी तेह ॥
पर परिणतिना पासने, निष्कासन रेह ॥
चंद्र० ॥ १ ॥

अर्थः-अज्ञानादि अष्टादश दूषण रहित तथा अनंत चतुष्टय सहित तथा शुद्ध नये आत्मधर्मनो उपदेश आपी भव्य समूहने मोक्षमार्गे दोरनार, विदेह क्षेत्रमां विहरमान श्री चंद्रबाहु जिनेश्वरनी शुद्ध भावे (आलोक परलोक संबंधी विषय भोगनी आकांक्षा रहित शुद्धात्म भाव प्रगट करवाना हेतु-रूप) करेली सेवा. सूर्य जेम अंधकारनो शीघ्रमेव नाश करे छे तेम लीला मात्रमां भव भ्रमणनो नाश करनार छे तथा " पर परिणतिना पासने निष्कासन रेह " जेम हरण शब्दना विषयमां मोहित थइ विविध प्रकारना वाजींत्रना मधुर कोमल स्वरना राग वशे पारधीये नांखेली जालमां आवी फसे छे, पोतानी स्वतंत्रताने गुमावी पराधीन थइ जीव जोखममां आवी पडे छे. तेमज संसारी प्राणीओ

शब्दादिक विषयना राग वशे मोह पल्लीपतिए पाथ-रेली अतिशय विस्तीर्ण अने दृढ कर्मजालमां आवी फसे छे, पोताना सहज स्वतंत्र अव्याबाध आत्म भोगने गुमावी बेसे छे, पराधीन दीन थाय छे, पोताना शुद्ध ज्ञानादिक प्राणना जोखममां आवी पडे छे, कषायाग्निमां (दग्धमान) पच्यमान थाय छे, बलता रहे छे, एहवा पर परिणतिना रागरूप बंधनने छेदवा माटे चंद्रबाहु जिनेश्वरनी सेवना तीक्ष्णधारा समान छे, तेथी मुक्त करवा अत्यंत सामर्थ्यवंत छे ॥ १ ॥

पुद्गल भाव आशंसना, उद्घासन केतु ॥
सम्यक्दर्शन वासना, भासन चरण समेत ॥
चंद्र० ॥ २ ॥

अर्थः-अनादिकालथी कर्म जालमां फसेलो पराधीन थएलो आतमभोगना ज्ञान तथा आस्वादननो वियोगी पुद्गलना रूप रस गंध स्पर्शादि विषयभोगमां मग्न थएलो संसारीजीव निरंतर पुद्गल विषयोनी आशंसना- तृष्णाने वश वर्त्ते छे. ते तृष्णाने छेदवाने चंद्रबाहु प्रभुनी सेवा केतु समान छे तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्

चारित्ररूप आत्मस्वभावमां वास करावनारा छे, आत्मगुणनां सुवासमां संतुष्ट करनार छे. ॥ २ ॥

त्रिकरण योग प्रशंसना, गुणस्तवना रंग ॥
वंदन पूजन भावना, निज पावना अंग ॥
चंद्र० ॥ ३ ॥

अर्थः-मन वचन अने काया ए त्रियोगनी शुद्धिए (कषायादि अप्रशस्त परिणाम रहित) देवाधिदेव श्री तीर्थंकर भगवंतनो यशवाद बोलवो, तेमना ज्ञानादिक पवित्र गुणनी स्तवना करवी, गुणानुराग करवो, वंदन पूजन विगेरे करवुं. तेमना ज्ञानादि शुद्धभाव अनुगत आपणो आत्म परिणाम करवो, ते सर्व आपणा आत्माने ज्ञानावरणादि पापथी मुक्त, पवित्र करवानां तथा शुद्धात्मपद प्राप्तिनां अंग छे ।३।

परमातमपद कामना, काम नाशन तेह ॥
सत्ता धर्म प्रकाशना, करवा गुण गेह ॥
चंद्र० ॥ ४ ॥

अर्थः-केवलज्ञान, केवलदर्शनादि, अनंत गुणपिंड आपणा शुद्धात्मपदनी कामना, ते साधवानी रुचि, ते पुद्गलादि अन्य द्रव्यनी कामना तृष्णाने

नाश करवानो हेतु छे, कारणके आपणो आत्माज परमात्मपदनुं उपादान छे, तेज परमात्म भावे परिणमनार छे माटे परमात्मपद क्षेत्रांतरे नथी अने क्षेत्रांतरे रहेली वस्तुनी कामनाज दुःखदायी छे माटे परमात्म पदनी कामना थवाथी अन्य सर्व कामनानो उच्छेद थाय छे. ते परमात्मपदनी कामनाना हेतु श्री जिनेश्वर भगवंत छे, तेथी तेमनी सेवा सत्तामां रहेली ज्ञानादि अनंत लक्ष्मीने प्रगट द्रष्टीगोचर करवाने तथा आपणा आत्माने गुणनिधान पूज्य पद आपवाने पुष्ट हेतु छे. ॥ ४ ॥

॥ परमेश्वर आलंबना, राच्या जेह जीव ॥
निर्मल साध्यनी साधना, साधे तेह सदीव ॥
चंद्र० ॥ ५ ॥

अर्थः—जगत् चूडामणि तरण तारण परमेश्वरनो आश्रय जे भव्य जीवोए रुचि बहुमान पूर्वक ग्रहण कर्यो छे तेज पुरुषो निरंतर पोताना शुद्ध साध्यने साधवावाला छे. परमात्मपद जेमां प्रगटपणे छे एवा तीर्थंकर भगवंत परमात्मपद साधनाना पुष्ट हेतु थइ शके पण अन्य कुदेवादिक जे पो अशुद्ध

आतमभावमां वर्त्ते छे ते मोक्षना हेतु केम थनी शके ? ॥ ५ ॥

॥ परमानंद उपायवा, प्रभु पुष्ट उपाय ॥
तुजसम तारक सेवतां, पर सेवन थाय ॥
चंद्र० ॥ ६ ॥

अर्थः-ते कारणमाटे हे चंद्रबाहु प्रभु परमानंद पद-मोक्षपद प्राप्त करावामां आपज पुष्ट उपाय छो.

" पुष्ट हेतु जिनेंद्रोयं, मोक्ष सद्भाव साधने "

हे प्रभु ! आप जेवा पूज्य पुरुषनी सेवा करतां अन्य जीव तथा पुद्गलनी आशा तृष्णा तथा सेवा मटी जाय, करवी न पडे ॥ ६ ॥

॥ शुद्धातम संपति तणा, तुम्हे कारण सार ॥
देवचद्रं अरिहंतनी, सेवा सुखकार ॥
चंद्र० ॥ ७ ॥

अर्थः-अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख तथा अनंतवीर्यरूप परमपवित्र, अविनश्वर अने स्वाधीन अखूट लक्ष्मी प्रगट-प्राप्त करवाना, हे भगवंत ! आपज साचा कारण छो. कारण के ते केवल ज्ञा-

नादि लक्ष्मीने आप संपूर्ण प्रगट स्वाधीन करी निरंतर भोगवो छो, तज्जन्य परमानंदमां मग्न छो. एवुं आपनुं स्वरूप द्रष्टि गोचर थतां मने पण एवुं भान थयुं के ए अनुपम विभूतिना ईश्वर माहरी स्वजाति छे, तेथी हुं पण आप समान लक्ष्मीनो स्वामी थवाने सत्तावंत छुं, एम भासन थतां आप समान परमात्मपद साधवानी मने रुचि थइ तेथी आप माहरी सिद्धिना साचा कारण छो. जो आपना परमानंदमय स्वरूपनुं मने दर्शन न थयुं होत तो मने परमात्म पद साधवानी रुचि पण थती नहि अने रुची थयाविना कार्य साधनामां उद्यम प्रवृत्ति थाय नहि अने साधना विना कार्य सिद्धि पण थाय नहि माटे न्यायद्रष्टिए जोतां आपनुं सिद्धपद माहरी सिद्धिनुं कारण प्रतित थाय छे ॥ उक्तंच विशेषावश्यके ॥ " सर्वोपि बुद्धौ संकल्प्य कार्यं करोति इति ॥ व्यवहारस्ततो बुध्याध्यवसितस्य कुंभस्य चिकीर्षितो मृन्मयःकुंभस्तद्बुद्ध्यालंबन तया कारणं भवति " तथा वली ते परमात्मपद साधवानो यथार्थ मार्ग बतावनार पण आपज छो तेथी पण आप माहरी सिद्धिना कारण छो माटे

कषाय जन्य भव समुद्रथी मुक्त थवा, बहु सन्मान सहित सेवे छे. जे भगवंतना दरेक प्रदेशे रहेला ज्ञानादि अनंत गुणो संपूर्ण पणे निर्मल प्रगट थया छे, ते गुणनो व्याघात करनार ज्ञानावरणादि घाती कर्मनो सत्ता सहित नाश कर्यो छे अने तेथी ज्ञानादि आत्म गुणनी सहज, अकृत्रिम, स्वाधीन, अने अविनश्वर अनंत अनुभूति (लक्ष्मी) प्रगट प्राप्त थइ छे, निरंतर तेना स्वामी तथा भोक्तापणे वर्त्ते छे—परमानंदमां निमग्न छे ॥ १ ॥

सामान्य स्वभावनी हो, के परिणति असहायी। धर्म विशेषनी हो, के गुणने अनुजायी ॥ गुण सकल प्रदेशे हो, के निज निज कार्य करे। समुदाय प्रवर्त्ते हो, के कर्त्ताभाव धरे ॥ २ ॥

अर्थः—सामान्य स्वभाव विना वस्तुनी छती नहि अने विशेष स्वभाव विना कार्य नहि, पर्याय प्रवृत्ति नहि, माटे पंचास्तिकाय ते सदा सामान्य विशेष स्वभावमयी छे.

जे स्वभावमां एकपणुं, नित्यपणुं, निरवयवपणुं, अक्रियपणुं, अने सर्वगतपणुं होय ते सामान्य

पंचास्तिकायमां अनंत विशेष स्वभाव छे.

वली हे भगवंत! आप स्वतंत्रपणे पोताना ज्ञानादिक कार्यना हमेशां कर्त्ता छो माटे आप परमेश्वर छो कारणके जीव द्रव्य शिवाय अन्य कोई पण द्रव्यमां कर्त्तापणुं नथी (कर्तृत्वं जीवस्य नान्येषाम्) कारण के "गुण सकल प्रदेशे हो के निज निज कार्य करे, समुदाय प्रवर्त्ते हो के कर्त्ता भाव धरे" आपना सकल प्रदेशे रहेला अनंत गुणो पोत पोतानुं कार्य करेछे पण ते सर्व प्रदेशे समुदाय मलीने एकठी प्रवृत्ति करेछे माटे आप स्वतंत्र कर्त्ता छो ॥ २ ॥

जड द्रव्य चतुष्के हो के कर्त्ता भाव नहि, ॥
सर्व प्रदेशे हो, के वृत्ति विभिन्न कही ॥
चेतन द्रव्यने हो, के सकल प्रदेश मीले ॥
गुणवर्त्तना वर्त्ते हो. के वस्तुने सहज वले ॥ ३ ॥

अर्थः–पण हे भगवंत! जडद्रव्य चतुष्कमां कर्त्ता भाव ठरी शकतो नथी, कारणके जो के ते जड द्रव्यना धर्म प्रदेशे प्रदेशे वर्त्ते छे परंतु सर्व

अर्थः-एम दरेक सर्व प्रदेशना गुणाविभागो एकत्र एक बीजाने सहकारीपणे सदा परिणमे, वली द्रव्य क्षेत्र कालनी प्रवृत्ति ते द्रव्यना परम-भावने अनुसारे वर्त्ते छे. जेम जीव द्रव्यनो भाव चैतन्यता छे माटे चैतन्य गुण पर्यायनो एक पिंड ते जीव द्रव्य छे, अने चैतन्य गुणने रहेवानुं अ-संख्यात प्रदेशमय स्थानक ते जीव द्रव्यनुं क्षेत्र छे अने चैतन्य गुण पर्यायनी प्रवृत्ति ते जीव द्रव्यनो काल छे यदुक्तं-" गुण समुदाओ दव्वं, खित्तं ओगाह वट्टणा कालो ॥ गुण पज्जाय पवत्ति, भावो नियवत्थु धम्मो सो ॥" दान लाभ भोगादि लब्धीओ ते वीर्य गुणनी सहाय विना वर्त्ती शके नहीं पण हे भगवंत ! आपनुं वीर्य क्षा-यिकपणे होवाथी गुण वृत्तिना समूहने अकंपपणे सहकारी थई शके छे तेथी आप हमेशां अबंध तथा परमोत्कृष्ट अवस्थामां वर्त्तो छो, कारण के "चलइ स फंदइ" ॥ ४ ॥

॥ पर्याय अनंता हो, के जे एक कार्यपणे ॥
वरते तेहने हो, के जिनवर गुण पभणे ॥

ज्ञानादिक गुणनी हो, के वर्त्तना जीव प्रते ॥
धर्मादिक द्रव्यने हो, के सहकारे करते ॥५॥

अर्थः–त्रिलोक पूज्य श्री जिनेश्वर देव एम कहे छे के एक कार्य पणे परिणमनारा अनंता छती पर्यायनो समुदाय ते गुण छे. जेम जाणवारूप सामर्थ्य छे जेमां एवा अविभागी पर्यायनो समुदाय ते ज्ञान गुण, देखवारूप सामर्थ्य छे जेमां एवा अविभाग पर्यायनो समुदाय ते दर्शन गुण, परिणामालंबन रूप कार्य सामर्थ्य छे जेमां एवा अविभागी पर्यायनो समुदाय ते वीर्यगुण, विगेरे एम दरेक द्रव्यना प्रति प्रदेशे पोतपोतानु एक कार्य करवानुं सामर्थ्य धरनारा अनंता अविभागरूप पर्यायनो समुदाय ते गुण छे. जीवद्रव्यना दरेक प्रदेशे जाणवा रूप कार्य करवानुं सामर्थ्य धरनारा अनंता अविभाग पर्याय छे तेनो समुदाय ते ज्ञान गुण. एम ज्ञानादि अनंत गुणनी वर्त्तना जीव द्रव्यमां छे. यदुक्तं–नय चक्र सारे–" तत्रैकास्मिन् द्रव्ये प्रति प्रदेशे स्व स्व एक कार्य करण सामर्थ्य रूपा अनंता अविभाग रूप पर्याया स्तेषां समुदायो गुणः भिन्न कार्य क-

रणे सामर्थ्यरूपा भिन्न गुणस्य पर्यायाः एवं गुणा अप्यनंताः प्रतिगुणं प्रतिदेशं पर्याया अविभाग रूपाः अनंता स्तुल्याः प्रार्थीइति ते चास्ति रूपाः प्रति वस्तुनि अनंता स्ततानंत गुणाः सामर्थ्य पर्यायाः" अने धर्मादिक जड द्रव्यमां ज्ञान गुणथी अतिरिक्त चलनसहकारादि गुणो वर्त्ते छे ॥ ५ ॥

ग्राहक व्यापकता हो, के प्रभु तुम धर्म रमी ॥ आतम अनुभवथी हो, के परिणति अन्य वमी ॥ तुज शक्ति अनती हो, के गातांने ध्यातां ॥ मुज शक्ति विकासन हो, के थाये गुण रमतां । ६ ॥

अर्थः-हे प्रभु ! भेदविज्ञाननी पूर्णता वडे आप निरंतर ज्ञानादिक शुद्धात्म गुणना ग्राहक छो. तेथी अतिरिक्त विषय कषायने ग्रहण करवाथी आप मुक्त थया छो, तेमज आपनी व्यापकता पण ज्ञानादिक शुद्धात्म गुणमांज निरंतर व्यापे छे पण विषय कषायमां कदापि काले व्यापे नहि तेथी आप सदा

परमार्थथी अव्याबाध छो तथा नित्य शाश्वत स्वाधीन अने एकांतिक सहज सुख पिंड शुद्धात्म द्रव्यनी अनुभूतिनो निरंतर आस्वाद लेनारा तथा तेमांज विलासी थई पौद्गलिक विभूतीनुं कर्त्तापणुं भोक्तापणुं तथा रमणपणुं वमनननी पेठे सर्वथा प्रकारे तजी दीधुं कारणके शुद्धात्म अनुभवरूप अमृतपानमां मग्न पुरुष, पौद्गलिक विषय कषायरूप हालाहल विष पीवाने केम इच्छे? हे प्रभु! " अजडत्वात्मिका चितिशक्तिः; अनाकारोपयोगमयी दृशिशक्तिः; साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः, अनाकुलत्व लक्षणा सुखशक्तिः, स्वरूप निर्वर्तन सामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः, अखण्डित प्रताप स्वातंत्र्य शालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः, क्रमाक्रमवृत्ति वृत्तलक्षणोत्पादं व्यय ध्रुवत्वशक्तिः" तथा कर्तृत्वशक्ति, भोक्तृत्वशक्ति, परिणामशक्ति, स्वधर्म ग्राहकत्वशक्ति, स्वधर्म व्यापकत्वशक्ति, तत्त्वशक्ति, एकत्वशक्ति, अनेकत्वशक्ति, कारणशक्ति, संप्रदानशक्ति, अपादानशक्ति, अधिकरणशक्ति, संबंधशक्ति, ए आदि अनंतशक्ति आपमां, समवाय संबंधे रहेली छे ते शक्तिओनुं

स्मरण तथा ध्यान करतां तथा शुद्धात्मगुणमां रमण करतां सत्तागते रहेली आप समान माहरी सर्वे शक्तिओ प्रगट थाय, सहज शिवलक्ष्मीनी प्राप्ति थाय ॥ ६ ॥

इम निजगुण भोगी हो, के स्वामी भुजंग मुदा ॥ जे नित वंदे हो, के ते नर धन्य सदा ॥ देवचंद्र प्रभुनी हो, के पुण्ये भक्ति सधे ॥ आतम अनुभवनी हो, के नित नित शक्ति वधे ॥ ७ ॥

अर्थः—एम शुद्धात्म गुण पर्यायने निरंतर भोगवनारा परमानंद समूह हे श्री भुजंग स्वामी! पवित्र भाव वडे जे आपनुं नित्यवंदन स्मरणादि करे छे तेज पुरुषो आ जगतत्रयमां धन्य छे! तेज पुरुषो स्तुति पात्र छे, तेज पुरुषो कृतार्थ छे, हे देवाधिदेव! आपनी भक्ति महत्पुण्यना योगेज साधी शकाय छे वली आपनीज भक्तिना पसाये बीजना चंद्रमानी पेठे आत्म अनुभवनी शक्ति

दिन प्रतिदिन वृद्धिगत थाय, आखरे पूर्णानंदनी प्राप्ति थाय ॥ ७ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ पंचदशम श्री ईश्वरदेव जिन स्तवनम् ॥

॥ काल अनंतानंत ए देशी ॥

सेवो ईश्वर देव, जिणे ईश्वरता हो, निज
अद्भुत वरी; तीरोभावनी शक्ति, आवी-
र्भावे हो, सहु प्रगट करी ॥ १ ॥

अर्थः—महाविदेहमां विहरमान हे श्री ईश्वरदेव ! आपे सर्व जगत् त्रयने आश्चर्य तथा परमानंद पमाडे एवी ईश्वरता प्रगट—संप्राप्त करी छे. ते ईश्वरता केवी छे—पोताना शुद्ध गुण पर्यायोमां वरते छे तेथी पूर्ण पवित्र स्वाधीन तथा अविनश्वर छे. परद्रव्यना रागथी रहित होवाथी राग द्वेष भय तथा कामनाथी रहित छे माटे अत्यंत सुख समूह रूप छे. परमानंदमय छे.

अनादि विभावने लीधे आत्मा राग द्वेष रूप अशुद्ध भावे परिणमी ज्ञानावरणादि अनेक प्रकारना कर्म बंधन वडे पोतानी ज्ञानादि अनंत विशेष

शक्तिओने आच्छादित करे छे, पोताना स्वाभाविक परमानंदथी विमुख रहे छे पण हे परमेश्वर! आपे पोताना आत्मानुं तथा पुद्गलादि परद्रव्यनुं स्वरूप यथार्थ ओलखी पोताना स्वरूपने सुखनिधान जाणी तेना रसिया थई सम्यक्पराक्रम आदरी परकर्त्तृता, परभोक्तृता, परग्राहकता, परव्यापकता, पररमणता विगेरे अनंत विभावनो परित्याग करी, शुक्लध्याननी तीव्र अग्नि वडे ज्ञानावरणादि कर्ममलने भस्मीभूत करी, शुद्ध सुवर्ण समान परम प्रकाशमान् अनंत परमानंदमय पोतानी ज्ञानादि सर्व शक्तिओ "आवीर्भावे प्रगट करी" प्रगट, निरावरण स्वकार्य प्रयुक्त करी राग द्वेष मोह विगेरे नाश करी, सर्व दूषण रहित स्वसत्तामां विराजमान रहि पोताना ज्ञानादि शुद्ध अनंत गुणोनी ईश्वरता निष्कंटकपणे भोगवो छो. तेथी हे परमेश्वर! आपमां साची ईश्वरता जाई परमाह्लादित थई पवित्र विनय युक्त आपनी द्रव्यभावथी सेवा करीए. द्रव्य भाव सेवानुं स्वरूप–

"द्रव्यसेव वंदन नमनादिक, अर्चन वली गुण ग्रामोजी। भाव अभेद थवानी ईहा, परभावे निःकामीजी" ॥

अर्थः-सर्व परभावनी कामना रहित जिनेश्वरना पवित्र गुणोमां बहु सन्मान धरी ते समान पवित्र गुणो प्रगट करी आरेहंत समान पोतानुं परमात्म पद साधवुं ते भावसेवा छे. तथा ते भावसेवाना कारणरूप, भावसेवाने प्रशस्त, परमपूज्य श्री जिनेश्वरना पवित्र गुणोनुं स्मरण तथा गान करवुं तथा ते जिनेश्वरनी परम पवित्र ज्ञान मूर्त्तिने वंदन नमनादि करवुं ते द्रव्यसेवा छे ॥ १ ॥

अस्तित्वादिक धर्म, निरमल भाव हो सहुने सर्वदा ॥ नित्यत्वादि स्वभाव, ते परिणामी हो जड चेतन सदा ॥ २ ॥

अर्थः-अस्तित्त्व, वस्तुत्त्व, द्रव्यत्त्व, प्रमेयत्त्व, अगुरुलघुत्त्व तथा सत्त्व ए छ मूल सामान्यस्वभाव सर्व द्रव्यमां सदाकाल निरावरणपणे वर्ते छे तथा सर्वे जड तथा चेतन द्रव्यो नित्यत्वादि स्वभावे निरंतर परिणमे छे. माटे ए सामान्यस्वभावनी निरावरणता वडे तथा साधारणधर्मना परिणाम वडे तो हे ईश्वरदेव ! आपने परमेश्वरपणानी पदवी प्राप्त थई शके नहि पण ॥ २ ॥

कर्त्ता भोक्ता भाव, कारक ग्राहक हो ज्ञान

में भोगव्या, हुं भोगवुं छुं, हुं भोगवीश, एम पर-भावना भोक्तापणानुं अभिमान करे छे. पण ज्यारे सम्यक्ज्ञाननी प्राप्ति थाय त्यारे पोताना ज्ञानादि शुद्ध गुण पर्यायने पोताना भोग उपभोग जाणी ते भोगववानो कामी थइ तेना भोगमां मग्न थाय, परभावनुं भोक्तापणुं दूर थाय. तेमज अनादि विभाव वशे अशुद्ध कारक प्रवृत्तिमां पोताना आत्म परिणाम ने थिर करे छे, तेमज परभावमां व्यापक अर्थात् तल्लीन-तद्‌गत थइ रहे छे, तेमज अशुद्ध ज्ञाने परिणमे छे अर्थात् देहने आत्मतत्त्व जाणे छे, पौद्गलीक भोगने आत्म भोग जाणे छे, पौद्गलीक विषय सुखमां सुख जाणे छे, शारीरिक वीर्यने आत्मवीर्य जाणे छे. तेमज पौदगलीक परिणाममां

नये पोतानी ज्ञानादि निष्कलंक, अविनश्वर लक्ष्मी-ना स्वामी–ईश्वर थया छो माटे आपज साचा ईश्वर छो. ॥ ३ ॥

पूर्णानंद स्वरूप, भोगी अयोगी हो उपयोगी सदा ॥ शक्ति सकल स्वाधीन, वरते प्रभुनी हो जे न चले कदा ॥ ४ ॥

अर्थः–वली हे भगवंत ! आप पूर्णानंद स्वरूप छो. जगत्वासी जीवो धन स्त्री आदि इष्ट पदार्थोनी अधिकतर प्राप्ति वडे पोताने पूर्णानंद माने छे; पण ते समुद्रना कल्लोलनी पेठे अवास्तविक छे, क्षण-भगूर छे, तृष्णा रूपी आगने वधारनार छे, तथा स्वाभाविक संपदानो घात करनार छे. पण आपनी ज्ञानादिक संपदा ते आपथी प्रदेशांतरे नथी तेथी ते दूर थवानो कदापि भय नथी, वली एक क्षेत्रा-वगाही होवाथी चाह दाहथी अतीत छे, वली ते ज्ञानादि संपदा सहज स्वाभाविक छे माटे ते राखवानो अथवा मेलववानो प्रयास करवो पडे तेम नथी, वली ते आपने सहज संबंधे छे तथा परद्रव्यथी अग्राह्य छे माटे तेने कोइ भांगी लूंटी

शक तेम नथी तेथी हे भगवंत ! आपज पूर्णानंद छो. यद्युक्तं-

श्लोकः—" पूर्णता या परोपाधेः सा याचितक मंडनं । या तु स्वाभाविकी सैव जात्यरत्न-विभानिभा ॥ अवास्तवी विकल्पैः स्यात् पूर्णताब्धे रिवोर्मिभिः ॥ पूर्णानंदस्तु भगवांस्तिमितोदधिसन्निभः ॥ "

तथा हे भगवंत ! आप स्वरूप भोगी छो; मात्र ज्ञानदर्शन चारित्रादि पोताना शुद्ध निरूपाधिक गुण पर्यायने भोगववा वाला छो तेथी आप सदा निष्कंटक छो, तथा हे भगवंत ! आप मन वच तथा कायानी क्रियाना अकर्त्ता थया छो, योगनुं ममत्व सर्वदा दूर कीधुं छे तेथी आप अयोगी छो, वली आप सदा उपयोगी छो, ज्ञानोपयोगनो घात करनार ज्ञानावरणीय कर्म तथा दर्शनोपयोगनो घात करनार दर्शनावरणीय कर्म ए बंनेनो आपे सत्ता सहित सर्वथा नाश कर्यो छे माटे हवे आपना उपयोगने कोइ पण स्खलना पमाडनार नथी तेथी आप सदा उपयोगी छो, सर्व समय शुद्ध ज्ञान-दर्शनोपयोगमां निरंतर वर्त्तो छो; एम हे भगवंत

ज्ञानादि सर्व शक्तिउं आप पोताने स्वाधीन वर्त्तावो छो वली सर्व कर्मनो अभाव करी आपे ते शक्तिउं पोताने स्वाधीन करी छे माटे ते हवे आपथी कोइ पण काले क्षणमात्र पण प्रदेशांतरे थनार नथी, सदा काल आपमां अचल पणे रहेशे तेथी तज्जन्य आनंद-मां आप सदा मग्न छो ॥ ४ ॥

दास विभाव अनंत, नासे प्रभुजी हो तुज अवलंबने ॥ ज्ञानानंद महंत, तुज सेवार्थी हो सेवकने बने ॥ ५ ॥

अर्थः—ज्यांसुधी आत्मा सचेत थयो नथी त्यांसुधी अनादि विभाव स्वभाव होवाने लीधे आत्मा सम्यक्ज्ञाने नहि परिणमतां अज्ञानपणे परिणमे छे, सम्यक्दर्शनपणे नहि परिणमतां मिथ्यादर्शनपणे परिणमे छे, स्वस्वरूपमां रमण नहि करतां विषय कषायमां रमण करे छे पंडित-भावे वीर्य नहि फोरवतां बाल बाधक भावे फोरवे छे, सूक्ष्म तथा स्थूल क्रियानो रागी थई कर्म बंधन करे छे शुद्ध स्वभावनो कर्त्ता नहि बनतां परभावनो कर्त्ता बने छे, शुद्ध स्वभावनो भोक्ता नहि बनतां परभावनो भोक्ता बने छे, शुद्ध ज्ञानादि गुणनो

ग्राहक नहि थवां परगुण पर्यायनो ग्राहक थाय छे, शुद्ध स्वभावमां नहि व्यापतां परभावमां व्यापे छे, एम ज्ञानादि अनंत गुणोने अशुद्धपणे परिणमाववा-रूप जे अनंत विभाव हुं सेवकने वळगेला छे ते सर्व विभाव हे परमेश्वर ! आपना अवलंबनवडे समूल नाश थशे. वळी हे परमेश्वर ? आपनी पवित्र आज्ञामां विचरवारूप साची सेवाथी हुं सेवकने अखूट अचल अविनश्वर ज्ञानानंद प्राप्त थशे. ज्ञानानंद तेज साचो आनंद छे. विषय कषाय वडे मनायेलो आनंद ते अवास्तविक कल्पित तथा दुःख निदान छे ॥ ५ ॥

॥ धन्य ! धन्य ! ते जीव, प्रभु पद वंदी हो जे देशन सुणे ॥ ज्ञान क्रिया करे शुद्ध अनुभव योगे हो निज साधकपणे ॥ ६ ॥

अर्थः धन्य छे ते जीवोने ? धन्य छे ते जीवोने ? के जे हे परमेश्वर ! आपना पवित्र चरण-कमलने वंदी सर्व जीवने सुखकारी संसार समुद्र-मांथी तारनार धर्मदेशना रुचि पूर्वक श्रवण करे महत्पुण्यना योगे आप श्रीनी दिव्यवाणीनो लाभ मले छे. रत्नचिंतामणी थी अत्यंत दुःप्राप्य अमूल्य

आपनी देशनानो यथार्थ रहस्य पामी पोताना शुद्धात्म पदना साधकपणे शुद्धात्म अनुभव थोने ज्ञानशुद्धि तथा क्रियाशुद्धि आदरे "ज्ञानशुद्धि"—संशय विभ्रम अने विमोह रहित शुद्ध तत्त्वनुं जाणवुं ते शुद्धज्ञान छे. ते शुद्धज्ञान सर्व दोषथी रहित केवलज्ञानदिवाकर श्री अरिहंतादिना सदुपदेशद्वारा तथा तेउनां प्ररुपेला सदागमद्वारा वाचना, प्रिच्छना, पर्यटना, अनुपेक्षा तथा धर्मकथा विगेरे साचा निमित्तथी शुद्धज्ञाननी प्राप्ति थाय छे माटे तेउनुं अतिचार रहित निरंतर सेवन करवुं जेथी ज्ञानशुद्धि थाय. " क्रियाशुद्धि "—क्रिया बे प्रकारे छे. बाह्य-क्रिया अने अंतरंग क्रिया—शुद्धा हारादिकनुं ग्रहण करवु तथा तथा इर्या भाषादि समितिनुं पालन करवुं विगेरे बाह्यक्रियाशुद्धि छे. तथा स्वसमय परसमय, स्वद्रव्य परद्रव्यने भिन्न भिन्न यथार्थ जाणवामां वर्त्तवुं तथा शुद्धात्म स्वरुपनो घात करनार क्रोधादिक कषायोनो भेद विज्ञान रूप तीक्ष्ण बाणवडे नाश करवो, तेओनो आत्म सत्ताभूमिमां प्रवेश थवा देवो नहि, एम शुद्धात्म स्वरूपनु रक्षण करवुं, शुद्धात्म अनुभवमां विचरवुं ते अंतरंग क्रियाशुद्धि छे. यदुक्त—द्रव्यानुयोग

तर्कणायाम् "बाह्य क्रिया आवस्यकादि रूपा बाहियोगोस्ति च पुनः अंतरंग क्रिया च स्वसमय परसमय परिज्ञान रूपा ज्ञानक्रिया अपरो द्रव्यानुयोगोस्ति" अंतरंगक्रियाशुद्धिनी प्राप्ति माटेज बाह्यक्रियाशुद्धि आदरणीय, प्रशंसनीय छे. संवर हेतु छे, पण अंतरंगक्रियाशुद्धिनी अपेक्षा वगरनी बाह्यक्रियाशुद्धि ते बंध हेतु छे.—"शुद्धात्म अनुभव विना बंध हेतु शुभ चाल ॥ आतम परिणामे रम्या, एहज आस्त्रव पाल ॥" माटे बाह्यक्रियाशुद्धिमां प्रवृत्त थतां अंतरंगक्रियाशुद्धिथी चूकवुं नहि अने अंतरंग क्रियाशुद्धिनी कारणरूप बाह्यक्रियाशुद्धिनी उपेक्षा करवी नहि माटे क्रियाशुद्धि तथा ज्ञानशुद्धि ए बनेनुं जिनाज्ञा प्रमाणे पालन करतो स्याद्वादमां कुशल एवो ज्ञानी शुद्ध निराश्रय निर्वाणपदने प्राप्त थाय छे.

यदुक्तः—वसंततिलका "स्याद्वाद कौशल सुनिश्चल संयमाभ्यां, यो भाव यस्य हरदः स्वामिहापयुक्तः । ज्ञान क्रिया नय परस्पर

तीव्र मैत्री, पात्री कृतः श्रयति भूमि मिमां स एकः।"

अर्थः-जे पुरुष स्याद्वादमां कुशल अर्थात् जीवादि तत्त्वना शुद्ध ज्ञानपूर्वक समिति गुप्तिरूप संयम आदरतो शुद्धात्म स्वरूपे निरंतर भावे छे ते ज्ञानी पुरुष ज्ञाननय अने क्रियानयनी तीव्रमैत्रीनुं पात्र थतो शुद्धात्मभूमि-निरवाण पदने प्राप्त थाय छे. ॥ ६ ॥

वारवार जिनराज तुज पद सेवा हो होजो निरमली ॥ तुज शासन अनुजाइ, वासन भासन हो तत्त्व रमण वली ॥ ७ ॥

अर्थः-माटे स्याद्वाद वाणीना उपदेष्टा हे परमेश्वर! आ भीषण भवसमुद्रमांथी तारवाने समर्थ एवी आपना चरण युग्मनी सेवानो निरंतर मने लाभ मलजो, वली हे परमेश्वर! आपना ज्ञान न्याय अने दया युक्त पवित्र शासननी रूची, ज्ञान तथा शुद्धात्म तत्त्वमां रमण ए सर्व सदाकाल माहरा आत्म परिणाममां वास करजो ॥ ७ ॥

शुद्धातम निज धर्म, रुचि अनुभवथी हो

साधन सत्यता ॥ देवचन्द्र जिनचन्द्र, भक्ति पसाये हो होशे व्यक्तता ॥ ८ ॥

अर्थः-शुद्धात्म धर्म (सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रादि) नी रुची तथा अनुभव जे वडे थाय ते सर्वे साधनो सत्य छे, तथा हितकारी छे. शुद्धात्म धर्मना अनुभवना हेतुरुपे आदरेला सर्वे बाह्य योगरूप साधनो सत्य तथा हितकारी छे. श्री देवचन्द्र मुनि कहे छे के हे जिनचन्द्र ! आपनी भक्ति पसाये अर्थात् आपनी आज्ञानुं सेवन करवाथी (आणाकारी भत्तो, आणा छेइओ सो अभत्तोत्ती) मारी सर्व शुद्धात्म संपदा प्रगट थशे. ॥ ८ ॥ (संपूर्ण.)

॥ अथ श्री षोडशम नमिप्रभ जिन स्तवनम् ॥

अरज अरज सुणोने रूडा राजीया हो जी ॥ ए देशी ॥

नमिप्रभ नमिप्रभ प्रभुजी विनवुं होजी,
पामी पामी वर प्रस्ताव ॥ जाणोछो जाणोछो
त्रिण त्रिनवे हो जी, तोपण दास स्वभाव ॥
नमिप्रभ० ॥ १ ॥

अर्थः-हे नमिप्रभ ! आपने आ जगत्त्रयमां प्रभु अर्थात् मालिक जाणी अनि दुःप्राप्य आ मनुष्य भवरूप उत्तम अवसर पामी आप प्रति विनंती करुं छुं. हे देवाधिदेव! आप अनंत ज्ञानयुक्त हुवाथी अमारा विनव्या वगर पण अमारी त्रणे कालनी सर्व हकीकत प्रत्यक्ष पणे जाणो छो तोपण सेवकनो स्वभाव छे के स्वामी आगल पोतानुं दुःख दूर थवा माटे विनंति करे ॥ १ ॥

हुं करता हुं करता परभावनो हो जी, भोक्ता पुद्गल रूप ॥ ग्राहक ग्राहक व्यापक एहनो हो जी, रच्यो जड भवभूप ॥ नमि-प्रभ० ॥ २ ॥

अर्थः-हे परमेश्वर ! अनादि विभाव योग हुं माहरा शुद्धात्म स्वरूपथी विमुख रही, स्वाभाविक कर्तृता, स्वाभाविक भोक्तृता, स्वाभाविक ग्राहकता, स्वाभाविक व्यापकता विगेरेथी चूकी माहराथी विपरीत, विलक्षण, रूप रस गंध स्पर्शादि गुणमय अचेतन जे पुद्गल द्रव्य तेने ग्रहण करवानो कामी तेने नवा नवा अनेक रूपे बनाववानो अभिमानी तेने भोगववानो इच्छक विगेरे थइ तेमांज निरंतर

व्यापी रह्यो, एम माहरा स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावथी, विमुखपणे वर्त्ती जड संगते जडवत् बनी भवसमुद्रमां भ्रमण करवाने निरंतर उद्युक्त थइ रह्यो ॥ २ ॥

आतम आतम धर्म विसारियो हो जी, सेव्यो मिथ्यामाग ॥ आस्रव आस्रव बंधपणुं कर्युं हो जी, संवर निर्जरा त्याग, नमिप्रभ० ॥ ३ ॥

अर्थः—राग द्वेषादि विभाव रहित स्वरूपने यथार्थ प्रत्यक्षपणे जाणवा रूप शुद्ध केवलज्ञान, निराकारोपयोग मयी केवलदर्शन, स्वरूपरमण—स्वरूपस्थिरता मय सम्यक्चारित्र, ए आदिज्ञानानुयायी पणे वर्त्तता शुद्धातम स्वभावो के जे आ संसार समुद्रमांथी मुक्त करी अव्याबाध स्वतंत्र अखूट परमानंद समूहनो निधान छे, ते शुद्धात्मधर्मने में न जाण्या, न चिंतव्या, न आदर्या पण ते शुद्धात्मधर्मने मलीन करनार—दूषवनार, मिथ्यात्व अज्ञान, अने कषाय रूप मिथ्यामार्ग (विपरित आचरण) के जे घोर अनंत दुःखनुं निदान छे तेनुं में रुचि सहित सेवन कर्युं. ए मिथ्यामार्गने सेवतां आस्रव तथा बंधना कर्त्ता थयो. मोक्षमार्ग रूप संवर

निर्जराने आदरी शक्यो नहि.

आस्त्रव–" निरास्त्रव संवित्ति विलक्षण शुभाशुभ परिणामेन शुभाशुभ कर्मागमन मास्त्रवः "–शुद्धात्म अनुभूतिथी विपरित जे शुभाशुभ परिणाम वडे ज्ञानावरणीयादि कर्मनु आगमन (आववुं) ते आस्त्रव छे. मिथ्यात्व अविरति कषायादि जो आत्माना अशुद्ध परिणाम ते भावास्त्रव छे अने ते भावास्त्रवना निमित्त वडे ज्ञानावरणीयादि कर्म दलनुं आववुं ते द्रव्यास्त्रव छे.

बंध–"बंधातीत शुद्धात्मोपलम्भ भावना च्युत जीवस्य कर्म प्रदेशः सहसंश्लेषो बन्धः– मिथ्यादर्शनाऽविरति प्रमाद कषाय योगा बन्ध हेतवः" मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय अने योग वडे पूर्व कर्म साथे नवा कर्मनो संबंध (द्रढ मलवुं) ते बंध छे. ते बंध चार प्रकारे छे–प्रकृति, स्थिति, अनुभाग अने प्रदेशबंध. तमां योग वडे प्रकृतिबंध तथा प्रदेशबंध थाय छे अने कषाय वडे स्थिति बंध तथा अनुभागबंध थाय छे.

विशेष विवेचन–" पिडिणीअत्तण निन्हव,

उवघाय पउस अंतराएणां ॥ अच्चासायणयाए, आवरण दुगं जिउं जयइ" ॥

सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन तथा सम्यक्ज्ञानी तथा सम्यक्दर्शनीना प्रतिकूल आचरणथी, तथा सम्यक्ज्ञान तथा सम्यक्दर्शने ओलववाथी, गुरुने छुपाववाथी तथा तेउनो उपघात करवाथी, तथा सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन तथा तेना स्वामी तथा तेना कारणो उपर द्वेष, मात्सर्य. ईर्षा करवाथी तथा ज्ञान दर्शनमां अंतराय करवाथी, ज्ञान दर्शन तथा तेना स्वामीनी आशातना करवाथी ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मनो बंध थाय छे.

उन्मार्गनी देशनाथी तथा सन्मार्गनो घात करवाथी ए विगेरे कारणोथी मिथ्यात्वमोहनीयनो बंध थाय छे. क्रोधादिक कषाय तथा हास्यादि नोकषायना सेवनथी चारित्रमोहनो बंध थाय छे.

महा आरंभ परिग्रहमां तल्लीनता, रौद्रध्यान तथा उग्रकषाय वाडे नरकायु नो बंध थाय छे. गूढ हृदय, मूर्खता, धूर्त्तता तथा मिथ्यात्वादि शल्य वडे तिर्यंच आयुनो बंध थाय छे. अल्प कषायता, दानरुचि तथा मध्यम गुण वडे मनुष्य आयुनो बंध

थाय छे. सम्यक् द्रष्यादि अविरति गुण वडे देवायुनो बंध थाय छे.

बालतप, अकामनिर्जरा, सरलता. अनागारीपणुं, विगेरे गुण वडे शुभनामकर्मनो बंध थाय छे. एथी विपरीत आचरण वडे अशुभ नामकर्मनो बंध थाय छे.

गुणद्रष्टी, मद रहितता, तत्त्व भणवा भणाववा उपर रूचि, जिन भक्तिमां मग्नता विगेरे गुण वडे उंचगोत्रनो बंध थाय छे. एथी विपरीत आचरण वडे नीचगोत्रनो बंध थाय छे.

गुर्वादिकनी भक्ति, क्षमा, करूणा, व्रत, संयम योग, कषाय, विजय, दान, शीलादिक धर्ममां द्रढता विगेरे गुणोथी शातावेदनीयनो बंध थाय छे. तेथी विपरीत आचरण वडे अशातावेदनीयनो बंध थाय छे-शंका समकीत, तप, संयम, क्षमा विगेरे थी आस्रव बंध केम संभवे? उत्तर "रत्नत्रय मिह हेतु-निर्वाणास्यैव भवति नान्यस्य ॥ आस्रवति यत्तु पुण्यं, शुभोपयोगऽस्य मपराध ॥" रत्नत्रय मात्र निर्वाण हेतु छे पण शुभाशुभ कर्मना हेतु नथी, देवादिक गतिना हेतु नथी. पण ज्यांसुधी

संपूर्ण वीतरागता प्राप्त थइ नथी, रत्नत्रयनी अपूर्णता छे त्यांसुधी सरागता वर्ते छे; ते सरागता-शुभोपयोगवडे कर्मास्रव थाय छे. जेम घृतमां बालवानो स्वभाव नथी परंतु घी साथे रहेली अग्निथी बलतां घीथी बल्यो एम बोलाय छे. तेम रत्नत्रयथी तो कर्मबंध थतो नथी तथापि ते रत्नत्रय साथ वर्त्तता शुभोपयोग (सरागता) वडे बंध थाय छे. माटे चोथा गुणस्थानथी मांडी संपूर्ण वीतराग गुणस्थान सुधी जे जे अंशे रत्नत्रय होय छे ते ते अंशे बंध नथी जेटला अंशे राग वर्ते छे तेटला अंशे बंध थाय छे.

एम शुद्धोपयोगथी चूकी अशुद्धोपयोगमां वर्त्ततां मोक्षमार्गरूप संवर तथा निर्जरा तत्वनो अनादर कर्यो.

संवर—" कर्मास्रव निरोध समर्थ स्व संवित्ति परिणत जीवस्य शुभाशुभकर्मागमन संवरणं संवरः " शुभाशुभ कर्मास्रवनो निरोध ते संवर छे. ते संवरना हेतु समिति, गुप्ति, परिसहजय, जतिधर्म, भावना तथा चरित्र छे.

निर्जरा—" शुद्धोपयोग भावना सामर्थ्येन

नीरसीभूत कर्म पुद्गलानामेक देश गलनं निर्जरा ॥ " शुद्धोपयोग भावनाना सामर्थ्य वडे नीरसीभूत कर्म पुद्गलोनुं एकोदेश गलवु ते निर्जरा तेनो हेतु तप छे. " तपसा निर्जरा च " तथा सर्व परद्रव्यनी इच्छानो निरोध ते तप छे "इच्छा निरोध स्तपः" ते इच्छा निरोधरूप भावयुक्त तप बे प्रकारे छे. अणसण " मूणोअरिया, वित्ती संखेवणं रसच्चाउ । काय किलेसा संलीणया य वझ्झो तवो होई ॥ पायच्छित्तं विणउ, वेयावच्चं तहेव सझ्झाउ । झाणं उस्सग्गोविय अभिंमतगउं तवो होई ॥" एम छे प्रकारे बाह्य तथा छ प्रकारे अभ्यंतर तप छे ॥ ३ ॥

जड चल जड चल कर्म जे देहने हो जी
जाण्युं आतम तत्त्व ॥ वहिरातमता बहि-
रातमता में ग्रही हो जी, चतुरंगे एकत्त्व ॥
नमिप्रभ० ॥ ४ ॥

अर्थः-जड अर्थात् अचेतन तथा चल अर्थात् जलनगर पाणीना परपोटाचत अस्थिर जे शरीर

तेने में आत्म तत्त्व जाण्युं एटले शरीरमांज अहं-बुद्धि करी शरीर तेज हुं छुं एम जाण्युं-शरीर वचन अने मननी क्रियाने में आत्मक्रिया जाणी योग-क्रियानुं ममत्व कर्युं, एम में बहिरात्मभावनुं ग्रहण कर्युं, आत्माथी अन्य जे अचेतन, जड, क्षणभंगूर शरीर तेमां अहंबुद्धि तथा धन, स्वजन, परिजना-दिकमां ममत्व बुद्धि करी आत्म स्वरूपथी अजाण रह्यो, माहरा स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावने न जाण्या, पुद्गलना द्रव्य क्षेत्र, काल, भावमां अहं ममत्व मान्युं, जे भाव माहरा अस्तिधर्ममां नथी तेने में माहरा मान्या, आत्मप्रदेशथी बाहिरला परक्षेत्री भावने माहरा मान्या, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्यथी रहित रह्यो. ॥ ४ ॥

केवल केवळज्ञान महोदधि हो जी, केवल-
दंसण बुद्ध । वीरज वीरज अनंत स्वभावनो
हो जी, चारित्त दायक शुद्ध ॥ नमि० ॥ ५ ॥

अर्थः—पण हे नमिप्रभ जगतगुरु! आप तो बहिरात्मभावनो अत्यंत अभाव करी सर्व द्रव्यने तेना त्रिकालवर्ती पर्यायो सहित एक समये प्रत्यक्षपणे जाणवा समर्थ एवुं जे केवलज्ञान तेना

महोदधि अर्थात् महान् समुद्रनी पेठे अखूट निधान थया छो, तेमज सामान्य सत्ता अवलोकन रूप केवलदर्शनना तथा कोइ पण काले जरा पण हीण क्षीण न थाय एवुं सहज आत्मीय अनंत वीर्य प्रगट कर्युं प्राप्त कर्युं तथा क्रोधादिक सर्वे कषायोनो अत्यंत अभाव करी दायक चरित्र प्राप्त कर्युं-प्रगट कर्युं, अनंत आत्मीय परमानंदना भोक्ता थया ॥५॥

विश्रामी विश्रामी निज भावना हो जी,
स्याद्वादी अप्रमाद । परमातम परमातम
प्रभु देखतां हो जी, भागी भ्रांति अनादि ॥
नमि० ॥ ६ ॥

अर्थः-तथा हे दयानिधान ! आप सर्वे परद्रव्योना गुण पर्यायोमांथी रमण तथा आराम विश्रामनो त्याग करी पोताना केवलज्ञानादि शुद्ध स्वभावमां रमण करनारा स्थिरतापणे विराजमान थया छो वली हे भगवंत ! आप स्याद्वाद धर्मयुक्त सदा छो अर्थात् स्यात्अस्ति स्वभाववंत छो, स्यात्नास्ति स्वभाववंत छो स्यात्एक स्वभाववंत छो, स्यात्अनेक स्वभाववंत छो, स्यात्वक्तव्य स्वभाववंत छो, स्याद् अवक्तव्य स्वभाववंत छो,

स्याद्‌नित्य स्वभाववंत छो, स्यात्‌अनित्य स्वभाववंत छो, स्यात्‌भव्य स्वभाववंत छो, स्यात्‌अभव्य स्वभाववंत छो, विगेरे अनंत स्याद्वाद धर्मयुक्त आप सदाकाल विद्यमान छो, तथा हे भगवंत! आप निरंतर अप्रमादभावमां वर्त्तो छो, क्षणमात्र पण पोताना शुद्धात्मधर्मथी च्युत थता नथी, कारण के प्रमादना हेतु जे निद्रा विकथा विषय कषाय मद स्नेह विगेरे छे तेनो आपे सर्वथा नाश करेलो तेथी हे परमेश्वर! आप परमात्म पदने संपूर्णपणे प्राप्त थया छो. एवा आप परमात्मानुं साची रीते दर्शन थतां माहरी अनादीकालनी अनात्मामां आत्मपणानी भ्रांतिनो नाश थयो ॥ ६ ॥

जिन सम जिन सम सत्ता ओलखी हो जी,
तसु प्रागभावनी ईह ॥ अंतर अंतर आतमता लही हो जी, पर परिणति निरीह ॥
नमि० ॥ ७ ॥

अर्थः—एम हे परमात्म प्रभु! केवलज्ञान केवलदर्शनादि अनंत शुद्धधर्मयुक्त आप स्वजातिनुं यथार्थ रीते दर्शन थतां में माहरी सत्ताने आप समान

जाणी, सद्दही, आपना केवलज्ञानादि शुद्धात्म धर्म मने रुच्या, ते प्रगट करवानी इच्छा थई, परपरिणतिथी विरागभाव उपज्यो, अंतर आत्मतानी प्राप्ति थई. ॥ ७ ॥

प्रतिछंदे प्रतिछंदे जिनराजने हो जी, करतां साधक भाव। देवचंद्र देवचंद्र पद अनुभवे हो जी, शुद्धातम प्रागभाव ॥ नमिप्रभ० ॥८॥

अर्थः-स्तुति कर्त्ता श्रीदेवचंद्र मुनि कहे छे-हे भगवंत ! आप जेम मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय योगनो त्याग करी परमात्म अवस्थाने प्राप्त थया तेमज हुं जो आप प्रमाणे साधक भाव आदरूं तो हुं पण निःसंदेह देवमां चंद्रमा समान परमात्म पदनो आस्वाद लेनार भोगवनार थाउं; शुद्धातम धर्मनी संपूर्ण प्रगटता थाय. ॥ ८ ॥

॥ संपूर्ण ॥

अथ सप्तदशम श्री वीरसेन जिन स्तवनम् ॥

॥ लाछलदे मात मल्हार ॥ ए देशी ।

वीरसेन जगदीश, ताहरी परम जगीश,

थाय छे, पण हे भगवंत ! आपे वीर्यांतरायनो समूल क्षय करी, अखूट, अनंत, अचल वीर्य संपूर्ण पणे पोताने स्वाधीन-प्रगट करी लीधुं छे; तेथी आ सर्व जगत्‌वासी जीवोमां उत्कृष्ट वीर्यवंत आपज छो, एहवा आपना द्रढ स्थिर अने सतेज वीर्य सामे मोहराजा द्रष्टि करवाने पण समर्थ थई शकतो नथी तो नजीक आववानी शी वात ? माटे आपनीज वीरजता सर्वोपरी पद धरावे छे ॥ १ ॥

अणाहारी अशरीर, अक्षय अजय अति धीर
आज हो अविनाशी अलेशी ध्रुव प्रभुता वाणीजी ॥ २ ॥

अर्थः-शरीर ते अनंत पुद्गलोना समूह रूप अचेतन पदार्थ छे, अने जीव द्रव्य पोते एक तथा सचेतन पदार्थ छे. तेथी जीव द्रव्यथी शरीर तदन विलक्षण, वस्तुतः भिन्न पदार्थ छे. तथापि अनादि अविद्या वडे. भेद विज्ञानना अभावे संसारी आत्मा अनेक प्रकारनां कर्म बांधी, ते कर्मना उदय वडे प्राप्त थएला शरीरनेज आतमपणे जाणे छे जेमके मनुष्यना शरीरमां रहेला जीवने मनुष्य तथा देवना शरीरमां रहेला जीवने दे-

विगेरे बनाय छे, अने तेथी शरीरी आत्मा शरीरी बने छे. पण हे भगवंत ! आप तो ते अविद्यानो नाश करी संपूर्ण भेद विज्ञान प्राप्त करी, स्वात्म द्रव्यने तद्दन भिन्न भिन्न जाणी शरीरमांथी अहं ममत्व उठाव्यो शरीरथी सर्वथा अतीत थया छो माटे हे प्रभु ! आप अशरीरी छो.

शरीर अनंत पुद्गलोना संयोगथी बनेलुं होवाथी सचल तथा अस्थिर छे, तेथी तेमांथी केटलाक पुद्गलो स्थलांतरे जतां बीजा पुद्गलो आहारवानी (लेवानी) जरूर पडे छे. माटे शरीरधारीने आहारनी जरूर पडे; परंतु हे भगवंत ! आप तो अशरीरी छो माटे आपने आहारनी जरूर नथी. आपनुं अंग एकता धारी छे तेथी तेमांथी कोइ पण काले रंचमात्र पण घसावानो, क्षीण थवानो संभव नथी माटे निःसंदेह आप अणाहारी छो.

अनेक पुद्गलोना मलवाथी जे वस्तु बनेली होय, तेज घसाई. भागी शके, पण एक पुद्गल परमाणुं आदि जे जे पदार्थमां एकत्व छे, असंयोगी छे, ते ते पदार्थ घसाई, भागी अथवा विणशी शके नहि. माटे हे भगवंत ! आप असंयोगी तथा

एकत्व सहित होवाथी आपना आत्म अंगमां कोइ पण काले रंचमात्र पण क्षय थवानो संभव नथी, आप अक्षय पदमां नित्य विराजमान छो.

सर्वे द्रव्यो पोतानी सत्ताभूमिमां पोताना गुण पर्यायोना स्वामी पणे वर्त्तवाने सदा काल सत्ताधारी छे. कोइ पण अन्य द्रव्य तेमां प्रवेश करवानेज समर्थ नथी तो आपने जीतवानी शुं वात ? माटे हे भगवंत ! आप सदा अपराजित (अजय) छो.

वळी आपनुं वीर्य क्षायिकभावे होवाथी आप अत्यंत धीर वीर छो. जेम सूर्यना प्रताप सामे अंधकार अत्यंत अभाव पामे छे, तेम आप श्रीना क्षायिकवीर्य जन्य धीर वीरताना. प्रतापथी आपना कर्म शत्रुओ अत्यंत अभावने प्राप्त थइ गया छे.

जो के सर्वे द्रव्यो वस्तुतः अविनश्वर छे. तथापि अनेक पुद्गलोथी बनेला शरीरमां ज्यांसुधी अहं ममत्व बुद्धि होय छे त्यां सुधी ते शरीरनो नाश थतां आत्मा पोतानो नाश मानी नाशपणाना दुःखने अनुभवे छे. पण आपे पोताना आत्म अंगमां आत्मपणुं जाण्युं स्वीकार्युं, पोताना एकत्व पिंडना अनुभवी थया. तेथी विनाशपणानो प्रसंग नाश

थयो माटे आप निरंतर अविनश्वर पदमां परमानंद भोगवो छो.

लेश्याना हेतु कषाय, योग छे पण आप तो कषाय तेमज योगथी सर्वथा मुक्त थया छो माटे अलेशी छो.

वली हे भगवंत! आपनी प्रभुता पण हवे ध्रुव (निश्चल) थई छे, संसारी जीवो अज्ञान वशे पोतानी सत्ताभूमिनी मर्यादा उलंघी परक्षेत्रे परगुण पर्यायोनी प्रभुता चाहे छे, एहवा अन्यायी पुरुषोनी कृत्रिम प्रभुता नाश पामे. परंतु आप न्याय शिरोमणी होवाथी परगुण पर्याय विषे पोतानी प्रभुता स्थापन करता नथी. निरंतर पोताना गुण पर्यायमां संतुष्ट छो. एम आपनी प्रभुता एक क्षेत्री, अप्रथग्भूत, तथा समवाय संबंधे होवाथी तेनो कांइ पण कारणे वियोग थवा संभव नथी माटे आपनी प्रभुता खरेखर ध्रुव निश्चल छे. आपनी प्रभुताने कांइ पण स्खलना करवा समर्थ थई शके तेम नथी. जे अन्यायी पुरुष पोतानुं घर छोडी पारके घेर चोरी करवा जाय तेनुं धन बीजा चोरो वडे पहेलां लूंटाइ जाय, पण जे न्यायी पुरुष बीजाना पदार्थनी आकांक्षा नहि राखतां पोतानी

विभूतिमां संतोष पणे निरंतर सचेत रहे तेनी विभूति बीजो कोण लूंटी शके ? ॥ २ ॥

अतींद्रिय गत कोह, विगत माय मय लोह ॥
आज हो सोहेरे मोहे जग जनता भणीजी॥३॥

अर्थः हे भगवंत ! आप अतींद्रिय छो. पांच इंद्रियोना स्पर्श, रस, गंध, रूप, अने शब्द ए पांच विषयो छे, आठे इंद्रियोनो विषय फक्त पुद्गल छे, परंतु आप अरूपी द्रव्य होवाथी इंद्रिय विषयथी तदन भिन्न छो तेथी आप इंद्रियो वडे अगोचर (अतींद्रिय) छो.

शरीरादि परद्रव्यमां जेने अहं ममत्व बुद्धि होय तेने क्रोध उपजवानो संभव छे कारण के ते शरीरादि अनित्य अने परक्षेत्री पदार्थो होवाथी कोइ तेने बगाडे विणशावे अथवा वियोग करे ते उपर तेने क्रोध उपजे छे. पण हे भगवंत ! आपतो ते शरीरादि परद्रव्यनुं सर्वथा ममत्व तजी पोताना नित्य अभेद्य समवाय संबंधी ज्ञानादि गुणोमां पोतानुं स्वामित्व अनुभवो छो. तेने कोइ पण अन्य द्रव्य रंचमात्र पण हरकत करवा समर्थ नथी तो आपना परिणाममां क्रोधने अवकाश क्यांथी !

क्षमा सरोवरमां निरंतर क्रीडा करता आप भगवंतनी पासे क्रोधाग्नि केम आवी शके ?

वली सर्प जेवी अविश्वास्य, जगत्मां फसावाने अत्यंत बलवत्तर जाल समान जे माया परिणति, तेने आपे तीक्ष्ण धारवाली आर्यव रूपी तरवार वडे छिन्न भिन्न करी नांखी छे.

वली जाति, लाभ, कुल, विद्या, अधिकार विगेरे आठ प्रकारना मदरूप अतिशय द्रढ पर्वतने आपश्रीए मार्दवरूप वज्रदंडवडे चूरेचूर करी नाख्यो छे.

तथा परद्रव्यादिने ग्रहण संग्रह करवारूप मूर्छाजले भरेला अतिशय विस्तीर्ण लोभसमुद्रने आप निस्पृहरूप वहाणमां आरूढ थइ सहज लीला मात्रमां तरी संतोष भूमिमां विराजमान थया छो.

एम आत्मगुणनो घात करनार तथा भवतरुना मूल रूप क्रोधादिक कषायोने आप भगवंते समूल क्षय करी क्षमा, मार्दव, आर्यव, निस्पृहता विगेरे अनुपम गुणालंकार वडे आप सर्वोत्तम शोभायमान छो, एवी आपनी निःकषाय परम शांत मुद्रा अवलोकता जगद्वासी जी वो अत्यंत विस्मय थाय छे. ॥ ३ ॥

अमर अखंड अरूप, पूर्णानंद स्वरूप। आज
हो चिद्रूपे दीपे थिर समता धणीजी ॥ ४ ॥

अर्थः—इंद्रिय, बल, आयु अने श्वासोश्वास ए चार जीवना व्यवहार प्राण छे अने ते प्राणना वियोगे मरण कहेवाय छे. पण हे भगवंत! आपे ते व्यवहार प्राणने पौद्गलीक पर द्रव्यथी निष्पन्न साक्षात्पणे जाणी ते प्राण उपरथी ममत्व उठावी पोताना शुद्ध चेतना प्राणवडे पोतानुं जीवन स्विकार्युं छे, ते चेतना प्राणनो आपथी कोइ पण काले वियोग थाय तेम नथी, माटे आप सदा अमर छो.

जे संयोगी पदार्थ होय तेमां संधि होय, अने जेमां संधि होय ते भांगी तूटी शके. पण हे भगवंत! आप असंयोगी शुद्ध एक तत्व छो, आपना अंगमां संधि नथी, तेथी आप सदा अखंड छो.

परम स्वभावने अनुयायीपणे द्रव्यना सर्व गुणो होय छे. जीव द्रव्यनो परम गुण चेतनत्व छे माटे जीवना सर्व गुणो चेतनानुगत होय, ए शिवायना गुणो जीव द्रव्यमां होइ शके नहिं; माटे रूप, रस, गंधादि गुणो चेतनानुगत नथी माटे रूपादिगुणोनो जीव द्रव्यमां अत्यंताभाव छे तेथी

हे भगवत ! आप सदा अरुपी छो.

जगत्‌वासी जीवो इष्ट पुद्‌गलोनी प्राप्ति, प्रभुता, तथा भोगवडे आनंद माने छे, पण ते परद्रव्यना लावे होवाथी जगत्‌जीवनो आनंद पराधीन, अवास्तविक, तथा क्षणभंगुर छे. पण हे भगवंत ! आप तो मात्र पोताना गुण पर्यायोनीज प्रभुता, तथा भोगवडे आनंद मानो छो तेथी आपनो आनंद निरूपचरित्त पूर्ण तथा नित्य छे, एम हे प्रभु ! आप पूर्णानंद स्वरुप छो.

तथा हे भगवंत ! आपनां आत्मीय ज्ञान प्रकाश किरणो के जे सर्व द्रव्यना त्रैकालिक परिणामथी अधिक छे, ते अनंत ज्ञान प्रकाश वडे आप निरंतर सर्वोपरी देदिप्यमान छो. आपना ज्ञान प्रकाशनुं आ जगत्‌त्रयमां कोइ उपमान नथी.

वली हे भगवंत ! आप सर्वज्ञ तथा वीतराग होवाथी पूर्ण समतावंत छो. इष्टानिष्ट विकल्पथी सर्वथा मुक्त छो. ते समता क्षायिक भाव जन्य होवाथी हवे कोइपण काले आपना परिणाममां विसमतानो संभव नथी तेथी आप पूर्ण निश्चल समताना स्वामी छो. ॥ ४ ॥

वेद रहित अकषाय, शुद्ध सिद्ध असहाय ।

आज हो ध्याय के नायकने ध्येय पदे ग्रह्योजी ॥ ५ ॥

अर्थः–नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, अने पुरुषवेद ए त्रणे वेदनो नवमे गुणस्थाने तथा सर्व कषायनो दशमा गुणस्थानना अंतसुधीमां समूल क्षय करी दीधो छे, तेथी हे भगवंत! आप वेद तथा कषाय रहित छो, तथा "खय परिणामे सिद्धा" ए सूत्र प्रमाणे आपमां क्षायिक अने परिणामिक ए बे भावज वर्त्ते छे, सकल कर्मनो क्षय करी क्षायिकभाव पोतानुं शुद्धात्म स्वरुप संपूर्ण सिद्ध प्रगट कर्युं छे. अनंतज्ञान, दर्शन, चारित्रना स्वामी थया छो. अने पारिणामिक भाववडे अनंतकालसुधी आपना ज्ञानादि गुणो असहायपणे निरंतर परिणमशे. कोइपण काले कोइपण आपना ज्ञानादि परिणामने स्खलना करी शकशे नहि माटे हे भगवंत! आप सादिअनंतकाल सुधी शुद्ध सिद्ध तथा असहाय छो.

उपर वर्णवेल गुणो सहित शुद्ध सिद्ध तथा असहाय आप भगवंतने अवलोकी आप समान सिद्धपदनो कामी हुं सेवक ध्याता, आप त्रिलोकपूज्य भगवंतने ध्येयपदे स्थापुं छुं, आपना पदनुं ध्यान करुं छुं. ॥ ५ ॥

दान लाभ निज भोग, शुद्ध स्वगुण उप-
भोग । आज हो अजोगी कर्त्ता भोक्ता
प्रभु लह्योजी ॥ ६ ॥

अर्थः-अंतराय कर्मना क्षयवडे हे भगवंत! आपमां दानादिक लब्धिउ क्षायिक भावे वर्ते छे.

वीर्यगुणनी सहायवडे सर्वे गुणो परिणमे छे. जेम ज्ञानगुणना उपयोग विना वीर्यगुण स्फुरायमान थइ शके नहि माटे वीर्यने ज्ञानगुणनी सहायता छे तथा शुद्धज्ञान परिणामने चारित्रनुं सहाय छे. वली चरित्र पराचरण रूप न परिणमे ते चारित्रने ज्ञान-गुणनो उपकार छे. एम एक गुणने बीजा गुणोनी सहाय छे, ते सहायरूप दानना कर्त्ता हे भगवंत! आपज छो. वली एवुं दान आप निरंतर आप्यां करो छो माटे आप अक्षय दाता छो. तथा ते दानना प्रभाववडे सर्वे गुणो पोतानी शुद्ध परिणतिए परिणमे छे, ते रूप लाभ लेनार पण आपज छो. एम आपमां दाता पात्र अने देयनी अभेदता छे. एम ज्ञानादि परिणाम हमेशां शुद्धपणे वर्ते छे. तज्जन्य आनंदना वेदनारा छो तेथी ज्ञानादि पर्यायना आप निःप्रयास पणे हमेशां भोक्ता छो.

जे एकवारज भोगववा योग्य होय ते भोग, अने जे अनेकवार भोगववा योग्य होय ते उपभोग कहेवाय छे माटे ज्ञानादि शुद्धगुणो सहभावी होवाथी हमेशां आपमां कायमपणे रहेनारा छे, माटे आपमां ते गुणोनो उपभोग छे.

वली हे भगवंत! मन, वचन, काया तथा कोइ पण पुद्गलयोग विना आप परकर्तृत्व तथा परभोक्तृत्व निवारी स्वभावना कर्त्ता भोक्ता बन्या छो, एहवा आप त्रिलोकपूज्य प्रभुनुं मने कोइ महत् पुण्यना पसाये आजे दर्शन मल्युं छे. इंद्रिय गोचर वस्तुनुं दर्शन तो सहजे सर्व पामी शके पण आप तो अरूपी निष्कर्म छो. आपना दर्शननी प्राप्ति तो विरलानेज थई शके छे. ॥ ६ ॥

दरिसण ज्ञान चरित्र, सकल प्रदेश पवित्र ॥आज हो निर्मल निःसंगी अरिहा वंदियेजी ॥ ७ ॥

अर्थः-आपनुं दर्शन थतां आपना सर्व प्रदेश अत्यंत निर्मल ज्ञान दर्शन अने चारित्र वडे परिपूर्ण पवित्र जोइ तथा आपनेज जगत् त्रयमां निर्मल तथा निःपरिग्रही अवलोकी कर्मशत्रुनो अंत आणनार आप श्री वीरसेन प्रभुने कर्म क्षय निमित्ते त्रिकरण योगे वंदु छुं ॥ ७ ॥

देवचंद्र जिनचंद्र, पूर्णानंदनो वृंद ॥ आज हो जिनवर सेवाथी चिर आनंदियेजी ॥ ८ ॥

अर्थः-स्तुती कर्त्ता श्री देवचंद्र मुनि कहे छे सर्व जिनोमां चंद्रमा समान वर प्रधान हे वीरसेन प्रभु ! स्वाभाविक, निःप्रयासिक, अनंत आनंदना समूहरूप आप जिनेश्वरनी आज्ञा सेवनरूप सेवाथी हुं पण आप समान अनंत परमानंदने प्राप्त थइश; शिवकमलानो विलासी थइश. ॥ ८ ॥

॥ अथ श्री अष्टादशम श्री महाभद्र जिन स्तवनम् ॥

तट यमुनानुं रे अति रलीयामणुं रे ॥ ए देशी ॥

महाभद्र जिनराज, राज राज विराजे हो आज तुमारडोजी । क्षायिक वीर्य अनंत, धर्म अभंगे हो तुं साहिब वडोजी ॥ हुं बलिहारीरे श्री जिनवर तणीजी ॥ १ ॥

अर्थः-सर्वे जिनोमां शिरोमणी परमकल्याणना निधान छे श्री महाभद्र प्रभु ! आपनुं राज्य सर्वोपरी समाधि तथा अनंत विभूति युक्त निर्विघ्नताए अलौकिक रीते शोभे छे, आपनुं राज्य

पराक्रम अक्षय, अजय तथा अपरिसीम छे, आपे सर्व कर्मशत्रुउनो सपरिवार नाश कर्यो छे, निर्वंश कर्या छे तेथी हवे कोइपण आपना राज्यमां विघ्न करी शके तेम नथी तथा आपनी अनंत पर्यायरूप प्रजा, अत्यंत सरल पंडित तथा सदाचरणी छे, आपना धर्मरूप कायदानो जरा पण भंग करे तेम नथी, आपना सर्वे धर्म कायदा संपूर्ण न्याय तथा दया युक्त होवाथी सदा सर्वत्र अभंग छे; एम आप सर्वोत्तम राजापणे विराजो छो, आपना राज्यनी बलिहारी छे. ॥ १ ॥

कर्त्ता भोक्ता भाव, कारक कारण हो तुं
स्वामी छतोजी । ज्ञानानंद प्रधान, सर्व
वस्तुनो हो धर्म प्रकाशतोजी ॥ हुं० ॥ २ ॥

अर्थः—वली ते पर्यायरूप प्रजाना उत्पन्न कर्त्ता पण आपज छो तथा तेना उपादान कारणरूप पण आपज छो, तेना अधिकरणादि अन्य कारको पण आपमांज अभेदपणे शोभे छे तथा ते प्रजाने सदाचरण युक्त—न्यायानुसार गमन करनार निरखी तज्जन्य राज्यानंदना भोक्ता पण आपज छो.

ते सर्वे प्रजामां शिरोमणी, आदरणीय तथा

अत्यंत वल्लभ एवा ज्ञानानंद स्वदेशी शेठने प्राण प्रधान पदे स्थाप्यो छे, ते ज्ञान प्रधान सर्व प्रजाथी संपूर्ण रीते माहितगार छे, जेना हृदयमां सर्व प्रजाना भाव निरंतर प्रकाशित रहे छे वली ते ज्ञानानंद प्रधान निरंतर आप समीप हाजर रहे छे समयमात्र पण दूरवर्त्ती नहि थतां सर्व प्रजानुं सदैव निरिक्षण तथा संरक्षण करे छे तथा कोइने पण त्रास नहि आपतां अत्यन्त हर्षपूर्वक न्यायानुसार वर्त्तावे छे, लेशमात्र पण न्यायातिक्रम थवा देतो नथी, एवो अद्भुत चातुर्य तथा विवेकवंत छे. ॥ २ ॥

सम्यकदर्शन मित्त, थिर, निर्धारे अविसंवादताजी । अव्याबाधि समाधि, कोश अनश्वरे रे निज आनंदताजी ॥ हुं० ॥ ३ ॥ देश असंख्य प्रदेश, निज निज रीते रे गुण संपत्ति भर्याजी । चारित्र दुर्ग अभंग, आतम शक्ते हो परजय संचर्याजी ॥ हुं० ॥ ४ ॥

अर्थः–अभिग्रहादिक पांच मिथ्यात्वने समूल नाश करी जेणे पोतानुं अंग निर्मल करेलुं छे तथा जे सम, संवेग, निर्वेद, आस्तिक्यता अने

अनुकंपादि लक्षणे युक्त, तथा कुशलता, तीर्थसेवा, गुरुभक्ति, दृढता तथा शासननी अनुमोदना विगेरे भूषणोथी भूषित, शंका, कांक्षादि सर्वे विसंवाद टाली अविसंवादताने स्थिर दृढपणे पोताना हृदयमां धारण करतो महा विनयवंत, आपना शासननो प्रभावक गुणनिधान एवो "सम्यक्दर्शन" नामे महाधीर वीर शुभट आपनो मित्र छे, जेनी साथे आपनो सम्यक्ज्ञान प्रधान पण एटली तिव्र मैत्री राखे छे के क्षणमात्र पण तेथी छूटो पडी शकतो नथी, जेउनां अंग मात्र जूदा जणाय छे पण जीव तो जाणे एकज छे ।

एवा सम्यक्दर्शन अने सम्क्ज्ञान छे महान् पुरुषो आपनुं राज्य अत्यंत चातुर्य,न्याय अने दया पूर्वक सर्व प्रज़ाने आनंदमां राखता निष्कंटकपणे चलावे छे तथा अव्याबाध समाधिरूप अनेक प्रकारना रत्नो-वडे आपना खजानाने सदा परिपूर्ण तथा अखूट राखे छे,निरंतर तज्जन्य परमानदमां आप विलसो छो;

वली आप ज्यांनुं राज्य करो छो ते देश असंख्यात प्रदेशवालो, जेनी सीमामां कोइपण वधघट करी शके नहीं एवो छे तथा जेना सर्वे प्रदेश

अनंता गुणाविभागरूप संपत्तिवडे तथा पर्यायरूप प्रजावडे ? भरेला छे.

एवा आपना अनुपम देशना, तथा तेमां वसती सरल प्रजाना रक्षण निमित्ते आपना मित्र तथा प्रधाने मळी पोताना अत्यंत बळ तथा चातुर्यवडे चारित्ररूप अत्यंत मजबूत तथा अभंग किल्लो बांध्यो छे. हे भगवंत ! एवा अलौकिक राज्यना आप स्वामी थया छो. एहवुं अलौकिक राज्य के जे मोहराजाए अनादिथी पोताना कबजे करी राख्युं हतुं तेने आपे केवी रीते प्राप्त कर्युं ? —" आतम शक्ति हो परजय संचर्याजी " अन्यनी मदद शिवाय मात्र पोतानी आत्मशक्ति स्फुरायमान करी सम्यक्दर्शन मित्र, तथा सम्यक्ज्ञान प्रधानने सा राखी मोहशत्रुने पराभव करवा रणभूमिमां प्रवेश कर्यो ॥ ३ ॥ ४ ॥

धर्मक्षमादिक सैन्य, परिणति प्रभुताहो तुज बल आकरोजी । तत्त्व सकल प्रागभाव, सादि अनंतीर रीते प्रभु धर्योजी ॥ हुं० ॥ ५ ॥

अर्थः—मोहराजाना लश्करने शीघ्रमेव नाश करनारा " क्षांति, मार्दव आर्जव, मुक्ति, तव,

संयम, सत्य, शौच, आकिंचन, अने ब्रह्मचर्य, एवा अपरिमित बलवाला सैन्य सज्ज कर्या अने ते सर्वे सैन्योनी प्रभुता (सेनाधिपति पणुं) शुद्धोप योगरूप महा अजीत अने निडर शुभटने आपी एवा अत्यंत तीक्ष्ण बलवडे मोहराजाना लश्करनो नाश कर्यो. क्षांति सैन्ये क्रोध लश्करनो, मार्दवे मान लश्करनो, आर्यवे माया लश्करनो, मुक्ति ! लोभ-स्पृहा लश्करनो, तपे पराकांक्षानो, संयमे हिंसानो. सत्ये असत्यतानो, शौचे मलिनतानो, अकिंचने पर संग्रह बुद्धिनो अने ब्रह्मचर्ये पररमणनो एम मोहराजाना सर्वे लश्करनो तथा परिवारनो नाश करी मोहराजाने प्राण रहित कर्यो अने सादिअनंत भांगे " तत्त्व सकल प्रागभाव " पोतानो संपूर्ण राज्याधिकार प्रगट कर्यो ॥ ५ ॥

द्रव्य भाव अरि लेश, सकल निवारीरे
साहिब अवतर्योजी । सहज स्वभाव विलास,
भोगी उपभोगी रे ज्ञानगुणे भर्योजी ॥हुं० ।६।

अर्थः—द्रव्य तथा भाव ए बंने प्रकारना शत्रुनो समूल नाश करी आप शिवक्षेत्रना राजा बन्या छो

तथा पोताना नैरुपाधिक सहज स्वतंत्र भोगना विलासी थया छो तथा आप ज्ञानानंदे परिपूर्ण सदा उपयोगवंत अर्थात् पोताना राज्यनी संभालमां निरंतर वर्त्तो छो ॥ ६ ॥

आचारिज उवझाय, साधक मुनिवर हो
देश विरत धरुजी । आतम सिद्धि अनंत,
कारण रूपे रे योग क्षेमंकरूजी ॥ हुं० ॥७॥

अर्थः-ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार अने वीर्याचार, ए पंचाचारमां वर्त्तनार तथा शिष्यजनने तेमां वर्त्तावनार (जोडनार) एहवा छत्रीश गुणवान् श्रीआचार्य, तथा सूत्रपाठना दातार श्री उपाध्याय, तथा पोताना शुद्धात्मतत्त्वने साधनार श्री मुनिराज, तथा पंचम गुणस्थानवर्त्ती देशव्रत धारीऊं, ए सर्वे आप महाराजनी आज्ञामां वर्त्तनार, पोताना मनवचन कायायोगने संयममां वर्त्तावनार होवाथी अनंत आत्म सिद्धिरूप आप समान राज्य भोग पामवाना कारण छे अर्थात् तेऊ अल्पकालमां आप समान शिवभूमिनुं राज्य प्राप्त करशे तथा ते आचार्यादिकोने शिवभूमिनुं राज्यप्राप्त करवामां आप भगवंत कारणरूपे

अर्थात् मददगार छो ॥ ७ ॥

सम्यग्दृष्टि जीव, आणारागी हो सहु जिन-
राजनाजी । आतम साधन काज, सेवे पदकज
हो श्री महाराजनाजी ॥ हुं० ॥ ८ ॥

अर्थः—वली चतुर्थ गुणस्थानवर्त्ती उपशम क्षयोपशम वा क्षायिक सम्यक्दृष्टि सर्वे जीवो हे भगवंत भवसमुद्रमां सेतु समान आपनी आज्ञाना रागी छे, आपनी आज्ञा पालवाने उत्सुक छे, तेउं पोतानुं शुद्धात्म स्वरूप प्रगट करवा माटे आप भगवंतना द्रव्यभाव चरणकमलने सन्माने छे ॥ ८ ॥

देवचन्द्र जिनचन्द्र, भगतें राचो हो भवि
आतम रुचिजी । अव्यय अक्षय शुद्ध. संपत्ति
प्रगटे हो सत्तागत शुचिजी ॥ हुं० ॥ ९ ॥

अर्थः—स्तुतिकर्त्ता श्रीदेवचंद्रमुनि मित्र भावनाना आवेशमां पोताना मुखकमलमांथी परम कल्याणकारी उपदेश आपे छे के पोतानी शुद्धात्म सिद्धिना इच्छुक हे भव्यात्माउं ! शिवक्षेत्रना महाराजा श्री जिनेंद्रभगवाननी आणा सेववामां लीन थाउं जेथी

तमारी सत्तामा रहेली पवित्र, अविनश्वर, अखूट, अक्षय शुद्धात्म संपदा सहज प्रगट थशे ॥ ९ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ एकोनविंशतिम श्री देवजसाजिन स्तवनम् ॥

॥ महाविदेह क्षेत्र सोहामणु ॥ ए देशी ॥

देवजसा दरिसण करो, विघटे मोह विभाव लाल रे ॥ प्रगटे शुद्ध स्वभावना, आनंद लहरी दाव लाल रे ॥ देवजसा० ॥ १ ॥

अर्थः- सर्वकर्म कलंकथी रहित अत्यंत पवित्र तथा अनंत ज्ञान दर्शन आदि अंतातीत अभ्यंतर लक्ष्मियुक्त त्रिलोकी चार निकायना देव तथा इंद्रादिना समूह जेनी अनुपम यशवाद बोले छे एवा श्री देवजसा प्रभुनुं हे भव्यात्माओ ! दर्शन करो, ते पूज्य भगवंतना स्वरूपनुं सम्यक् प्रकारे अवलोकन करो, जेथी अनादिथी वलगेला अज्ञान मिथ्यात्व मोह विगेरे दुःखदायक विभाव समूह

नाश पामे तथा जेमांथी निरंतर परमानंदनी कल्लोलो उठ्यां करे एवो संवर पूरे भरेलो पवित्र रत्ननिधान शुद्धात्म स्वभाव प्रगट थाय. एवा आपना प्रत्यक्ष दर्शननी हे प्रभु ! मने अत्यंत अभिलाषा छे परन्तु ॥ १ ॥

स्वामी वसो पुष्करवरे जंबू भरते दास लाल रे ॥ क्षेत्र विभेद घणो पड्यो, किम पोहोंचे उल्लास लाल रे देव० ॥ २ ॥

अर्थः–हे भगवंत ! आप तो पुष्कलावर्त्त विजयमां विचरो छो अने आपना दर्शननो अभिलाषी सेवक हुं जंबुद्विपना भरतक्षेत्रमां वसु छुं एम आपना तथा माहरा स्थानकने घणुं अंतर छे तेथी आपना प्रत्यक्ष दर्शननी मनोकामना शीरीते पूर्ण थाय

प्रकारांतरे–हे भगवंत ! ज्यां कर्म कलंकनो रंच मात्र पण प्रवेश नथी एवा पवित्र ज्ञानादि लक्ष्मीना निवासरूप विदेह अर्थात् देह रहित अरूपी सिद्धक्षेत्र आप विराजमान छो अने हुं सेवक कर्मकलंक वडे मलिन, अज्ञान अने मोह अंधकार वडे भरपूर संसार क्षेत्रमां परिभ्रमण करूं छुं; एम

आपना तथा माह्‌रा क्षेत्रमां अत्यंत भेद (अंतर) पड्यो छे तो आपना प्रत्यक्ष दर्शननी माह्‌री मनोकामना शीरीते पूर्ण थाय ? ॥ २ ॥

होवत जो तनु पांखडी, आवत नाथ हजूर लालरे ॥ जो होती चित्त आंखडी, देखत नित्य प्रभु नूर लालरे ॥ देव० ॥ ३ ।

अर्थः–पण हे भगवंत! जो माह्‌रा शरीरे पांखो होत तो हुं ते पांखो वडे उडी पूश्कलावर्त विजयमां आप प्रभुना समीप आवी आपनुं दर्शन, वंदन करत अथवा जो मने चित्त आंखडी अर्थात् ज्ञान नेत्र अवधिदर्शन होत तो अहिंआं रहीने पण चोत्रीश अतिशय अने अष्ट महा प्रातिहार्यादिक विभूति सहित आपना तेजस्वी रूपने हमेशां निरख्यां करत.

प्रकारांतरे–हे भगवंत! जो माह्‌रा आत्म अंगे सम्यक्‌चारित्र रूप प्रबल पांखो होत तो ते पंखे वडे चिदाकाशमां उडतो-विहार करतो आप ज्यां वसो छो एवा विदेह–देह रहित सिद्ध क्षेत्रमां आप समीप आवी हाजर थात अथवा जो कदाच चित्त आंखडी कहेतां केवलदर्शन होता तो आ क्षेत्रमां रहीने

पण अनंत ज्ञान दर्शन आदि अत्यंत अभ्यंतर विभूति युक्त आपना लोकालोक प्रकाशक अनंत प्रकाश युक्त महान् तेजस्वी स्वरूपने निरंतर निरख्यां करत पण ते बंने शक्तिओथी हुं रहित छुं तो आपनुं दर्शन केम पामु ? ॥ ३ ॥

शासन भक्त जे सुरवरा, विनवुं शीष नमाय लालरे ॥ कृपा करो मुज ऊपरे, तो जिन वंदन लालरे ॥ देवजसा० ॥ ४ ॥

अर्थः-ऊपर प्रमाणे माहरामां देवजसा प्रभुनुं दर्शन पामवानी शक्ति नहि होवाथी जिनशासनना भक्त हे महान् देवो ! हुं आपनी सहाय चाहुं छुं, मस्तक नमावी विनंति करूं छुं के जो आप माहरा ऊपर कृपा करी जो अपना सामर्थ्य वडे देवजसा प्रभु पासे मने लेई जाऊं तो ते प्रभुनां दर्शन वंदननो मने लाभ मळे.

प्रकारांतरे-ऊपर प्रमाणे सम्यक्चारित्ररुप पांखो अथवा केवल दर्शनरुप आंखो मने नहीं होवाथी देवजसा प्रभुनुं दर्शन वंदन प्राप्त करवामां जिन शासन अर्थात् जिनेश्वरना आज्ञानुं पालन कर-नारा तथा बीजाने तेमां जोडनारा हे सूरवरा अर्थात् महान् आचार्यो हुं आपने मस्तक नमावी

क्रिया सुपसायरे, भवि ०॥ अमृत क्रिया अनुष्ठानथीरे, मन ०। आतम अमृत थायरे ॥ भवि ०॥ २॥

अर्थ :- जिनेश्वरना ज्ञानादि शुद्ध गुणोनुं सेवन बहुमानरूप अमृतनुं पान करवाथी अमृत क्रिया (अमृतानुष्ठान) नी प्राप्ति थाय, अने अमृतानुष्ठान वडे सकल मोहनो क्षय थई आत्मा अजर अमर अविनश्वर शुद्ध सिद्धपदने प्राप्त थाय अने अन्य जीवोने अमृत समान भव रोगथी मुक्त करवानो हेतु थाय. अनुष्ठान पांच प्रकारनां छे- विषानुष्ठान, गरलानुष्ठान, अनानुष्ठान तद्धेतु अनुष्ठान, अने अमृतानुष्ठान.

विषानुष्ठान—आहारोपधि पूजर्द्धि, प्रभृत्याशंसया कृतं, शीघ्रं सच्चित्तहन्तृत्वा द्विषानुष्ठान मुच्यते ॥ अध्यात्मसार पा. ४५६

अर्थः—मिष्टान्न भोजननी लालचे, वस्त्रादि उपकरणनी लालचे, पूजानी लालचे, रिद्धिनी लालचे जे तप जपादि क्रिया करे ते क्रिया चित्त शुद्धिनी हणनारी छे तेथी ते विषानुष्ठान कहेवाय छे, आ भवमां पौद्गलीक भोगोनी प्राप्ति थवानी

लालचे ईच्छाए जे तपादि अनुष्टान आदरवुं ते विषानुष्टान छे.

गरलानुष्टान—दिव्यभोगाभिलाषेण, कालांतर परिक्षयात् । स्वादिष्ट फल संपूर्त्ते गरानुष्टान मुच्यते ॥ यथा कुद्रव्य संयोग, जनितं गर संक्षितं । विषं कालांतरे हन्ति तथेदमपि तत्त्वतः ॥ अध्यात्म सार पा० ४५७

अर्थः—परभवे देव इंद्रादिकना दिव्य भोग मले एवी इच्छा, लालचवडे जे तपादि अनुष्टान आदरवुं ते गरलानुष्टान छे. जेम वंगडीचूर्ण प्रमुख द्रव्यना संयोगे प्रगट थतुं विष ते गरल नामा विष कहिए, ते घणा दिवस कष्ट पमाडी मारे छे; तेम गरलानुष्टान पण अहितकारी कुगति आदि आपे छे.

अन्योन्यानुष्टान—प्रणिधानाद्यभावेन कर्मान ध्यवसायिनः ॥ संमूर्छिम प्रवृत्त्याभ मननुष्टान-मुच्यते ॥ उंघ संज्ञात्र सामान्यं, ज्ञानरूपा-निबंधनं । लोक संज्ञा च निर्दोष सूत्र मार्गा-नपेक्षणी ॥ अध्यात्मसार पा० ४५७

अर्थः-संसारमां भ्रमण करता अनेक प्रकारना दुःख सहता ज्ञानादिक लक्ष्मी रहित दीन कंगाल जीवो ऊपर अत्यंत करुणा करी मोक्ष मार्ग दोरनार होवाथी हे प्रभु ! आपज दीन दयाल छो तथा कृपालुओ कहेतां कृपाना आलय (निधान) छो, दीन अनाथ जीवोना नाथ छो, संसार समुद्रमां डूबता भव्य जीवोने उद्धारवा माटे आप पुष्ट अवलंबन छो, सर्व देवोमां चंद्रमा समान हे देवजसा प्रभु ! आपनी सेवना सर्वोत्कृष्ट अमृत समान परमानंद दातार तथा शिव सुखनी करनार छे ॥ ८ ॥

॥ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ विंशति श्री अजितवीर्यजिन स्तवनम् ॥

अजितवीर्य जिन विचरतारे, मन मोहनारे लाल ॥ पुष्कर अर्द्ध विदेहरे, भवि बोहनारे लाल ॥ जंगम सुरतरु सारिखोरे, मन मोहनारे लाल ॥ सेवे धन्य धन्य तेहरे, भवि मोहनारे लाल ॥ १ ॥

अर्थः-अतिशय दुर्जय मोहराजानो जेणे लीला मात्रमां समूल क्षय करीनांख्यो छे, तथा जेनुं वीर्य हणवाने कोइ पण समर्थ नथी एहवा अतिशय निश्चल

अनंत वीर्यवंत, पुष्कलावर्त विदेहमां विचरता हे श्री अजितवीर्य प्रभु! जेम कमलने सुगंधनुं आवास जाणी भ्रमर तेमां मोही रहे छे, तेम शुद्धात्म अनुभव वडे भरपूर आपनी अत्यंत शांत मुद्रा विलोकी प्रशस्त राग वडे भव्य जीवोनुं चित्त आपमां मोहित रहे छे, एवी रीते आ त्रिलोकमां आप मनमोहन छो, तथा अज्ञानरूप अंधकार वडे आवृत थएला भव्य जीवोना हृदय कमलने विकश्वर करनार छो, तथा कल्पवृक्ष तो स्थावर होवाथी हमेशां एकज ठेकाणे रही ईच्छित फल आपी शके छे तो पण ते पौद्गलीक तथा विनश्वर छे पण आप तो अनेक स्थले विहार करी कोई पण काले नाश अथवा विरस न थाय एहवुं स्वाधिन तथा सर्व कामना जेथी पूर्ण थाय एहवुं रत्नत्रयरूप फल भव्यजीवोने निरंतर प्रदान करो छो माटे हे भगवंत! खरेखर आपज आ जगत्‌त्रयमां अद्वितीय कल्प वृक्ष छो. तेथी हे भगवंत! जे प्राणीउ आपना चरणकमलनी सेवामां लीन छे तेउने धन्य छे! वली धन्य छे! तेउने के जे आ अपार भवसमुद्रने गोपदनी पेठे सहज उलंघी जनारा छे. ॥ १ ॥

जिन गुण अमृत पानथी रे, मन ०। अमृत

अंतरंग बहु सन्मान (विनय) युक्त आपने विनंती करूं छुं के जो आप माहरा ऊपर कृपा करो, मने सम्यक् चारित्रमां जोडो तो हुं ते चारित्र रूप पांख वडे श्री देवजसा प्रभुनी समीप जई शकुं, ते प्रभुना प्रत्यक्ष दर्शननो मने लाभ मले ॥ ४ ॥

पूछुं पूर्व विराधना, शी कीधी ईणे जीव लाल रे ॥ अविरति मोह टळे नहीं, दीठे आगम दीव लाल रे ॥ देवजसा० ॥ ५ ॥

अर्थः-हे प्रभु ! आ माहरा जीवे पूर्वे आत्म धर्मनी केवी तीव्र विराधना करी छे के आत्म अनात्मनुं स्वरूप यथार्थ प्रकाश करनार जिनागम-रूप दीपकनी प्राप्ति थया छतां पण पंचेंद्रियना विषय जे पुद्गल परिणाम ते ऊपर रागरूप अविरति तथा स्वपर जीवना द्रव्यभाव प्राण हणवारूप हिंसा, तथा क्रोधादिक कषाय विगेरे आत्म भावने अत्यंत अप्रशस्त तथा दुःखदायक परिणाम हजु सुधी टलता नथी ॥ ५ ॥

आतम शुद्ध स्वभावने, बोधन शोधन काज लाल रे ॥ रत्नत्रयी प्राप्तितणो, हेतु कहो महाराज लाल रे ॥ देवजसा० ॥ ६ ॥

अर्थः-कर्म कलंक (सर्व विभावगी) रहित शुद्धात्म तत्त्वनुं स्वरूप यथार्थ पणे जे वडे जणाय तथा अनादिथी वलगेला मिथ्यात्व अज्ञान कषायादि विभावनो सर्वथा अभावथई जे वडे म हरो आत्मा कर्म कलंकथी रहित परम पवित्र थाय ते सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयनी प्राप्ति शीरीते थाय ते करुणा करी कहो ॥६॥

तुज सरिखो साहिब मिल्यो, भांजे भव भ्रम टेव लालरे ॥ पुष्टालंबन प्रभू लही, कोण करे पर सेव लालरे ॥ देवजसा० ॥ ७ ॥

अर्थः-समस्त दूषणोथी रहित परम पवित्र अनंत गुणनो निधान, लोकालोक प्रकाशक, रत्नत्रयनी प्राप्ति करावी अनादिथी लागेली भव भ्रमणनी टेवथी मुक्त करनार, भव समुद्रथी तारवामां पुष्टालंबनरूप आप भगवंतनुं दर्शन पाम्या पछी अन्य कुदेवादिकनुं कोण सेवन करे ! कल्पवृक्षने त्यागी धंतुराने कोण सेवे ॥ ७ ॥

दीनदयाल कृपालुओ. नाथ भविक आधार लालरे ॥ देवचंद्र जिन सेवना, परमामृत सुखकार लालरे ॥ देवजसा० ॥ ८ ॥

अर्थः--सूत्र कथित निर्दोष मार्गनी अपेक्षा विना तथा शुद्ध प्रणिधानादिकने अभावे उपयोग शून्ये संमूर्छिमनी पेठे बीजाना देखादेखी जे क्रिया करवी ते अन्योन्यानुष्ठान जाणवुं-सूत्रनी शैली रहित पणे गतानुगतिक पणे ओघसंज्ञाए तथा लोक संज्ञाए जे करवुं ते अन्योन्यानुष्ठान छे ते उपयोग शून्य अर्थात् ज्ञान रहित होवाथी ते वडे सकाम निर्जरा थई शके नहि, आ विषादि त्रणे अनुष्ठानमां अशुद्ध क्रियानो आदर उपजे छे माटे आ त्रणे अनुष्ठान त्यागवा लायक छे.

यदुक्तं सूत्रकृतांगे-" जे अवुद्धा महाभागा, वीरा असम्मत्त दंसिणो । अशुद्धं तेसि परक्कंतं, सफलं होई सव्वसो ॥ "

अर्थः-व्याकरणादिक लौकिक अनेक शास्त्रने जाणनारा पण जैन सिद्धांतना शुद्ध तत्वज्ञानथी अजाण अर्थात् सम्यक्त्व परिज्ञानथी रहित होवाथी अवुध, एहवा पुरुषो जो के शूरवीर होय तथा त्यागादि गुण वडे लोकमां पूज्य गणता होय तथापि तेओनो दान, तप, नियम आदिकने विषे उद्यम पराक्रम ते सर्व अशुद्ध जाणवो. कारण के

तेओनुं तपादिक सर्वे अनुष्ठान कर्मबंधना कारण विषे सफल थाय एटले नवा कर्मबंधननुं कारण थई शके नहि; कारण के सकाम निर्जरा तो सम्यक्ज्ञानेज थाय—" जेय वुद्धा महाभागा, वीरा सम्मत्त दंसिणो, सुद्धं तेसिं परक्कंतं, अफलं होइ सव्वसो, ॥

अर्थः-जे सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन सहित छे तेज बुध पुरुष छे, जे पूज्य छे, जे साचा शूरवीर छे, अने तेओनोज तपादिक अनुष्ठानमां उद्यम-पराक्रम शुद्ध जाणवो, अने तेओनुं अनुष्ठान नवां कर्मबंधन अटकावी शके छे तथा सकाम निर्जरानो हेतु छे.

तद्धेतु अनुष्ठान—सदनुष्ठान रागेण, तद्धेतुमार्गगामिनां । ए तच्च चरमावर्त्तेऽनोभोगाद्यो र्विना भवेत् ॥ धर्मयौवनकालोयं, भवबालदशा परा ॥ अत्रस्यात् सत्क्रिया रागोऽन्यत्र चासत् क्रियादरः ॥

अर्थ—चरमपुद्गल परावर्त्त धर्मना यौवनकाले बालदशा टले थके मार्गानुसारी पुरुष शुद्धानुष्ठानना

राग वडे उपयोग सहित जे कई क्रिया, आदरे ते तद्धेतुअनुष्ठान जाणवुं.

अमृतानुष्ठान–सहजो भाव धर्मोहि शुद्ध श्चंदन गंधवत् ॥ एतद्गर्भमनुष्ठानममृतं संप्रचक्ष्यते ॥ जैनीमाज्ञां पुरस्कृत्य, प्रवृत्तं चित्त शुद्धितः । संवेग गर्भमत्यंतममृतं तद्विदो विदुः ॥

अर्थः–सहज भावधर्म ते शुद्ध चंदननी सुगंध समान छे. अने ते भावधर्म सहित जे अनुष्ठान ते अमृतानुष्ठान छे. अत्यत संवेग गुण सहित चित्त शुद्धिए जिनेश्वरनी आज्ञामां वर्त्तवुं तेने गणधरादिक अमृतानुष्ठान कहे छे तेज मोहनो संपूर्ण क्षय करवा समर्थ छे. ॥२॥

प्रीति भक्ति अनुष्ठानथी रे ॥ भ० ॥ वचन असंगी सेवरे ॥ भवि० ॥ कर्त्ता तन्मयता लहेरे ॥ भ०॥ प्रभु भक्ति नित्यमेवरे ॥भवि.।३।

अर्थः–सर्वे पुद्गल भावमांथी प्रीति उठावी मात्र एक जिनेश्वरना स्वाभाविक पवित्र ज्ञानादि गुणोमां अत्यंत प्रीति भाव करवो तेमां चित्तनी

तल्लीनता करवी ते प्रीति अनुष्टान छे.

तथा श्री जिनेश्वरने परम करुणाना निधान, भवसागरमांथी भव्य जीवोने मुक्त करनार, धर्मधुरंधर, तीर्थना प्रवर्त्तक जाणी तेओना गुणनुं बहुमान करवुं, अतिशय आदर विनय पूजा सेवना विगेरे करवां भक्तिअनुष्ठान छे.

वली लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञानवडे सर्वे तत्त्वना यथार्थ वेत्ता तथा उपदेशक परम वीतराग आप्त श्री जिनेश्वरना वचननी यथार्थ श्रद्धा करवी तदनुसार हर्षयुक्त आचरणमां प्रवर्त्तवुं ते वचनानुष्ठान छे.

हे प्रभु ! ए त्रण अनुष्ठान जे भावयुक्त सेवन करे तेने सर्वे विभाविक क्रियाथी निवृत्ति तथा सहज आत्मीक परिणामीकतानी प्राप्ति क्षय असंग अनुष्ठान थाय.

एम ए चार अनुष्ठाननो कर्त्ता हे भगवंत ! आप स्वरुपने प्राप्त थाय. माटे हे प्रभु ! आपनी भक्तिमां माहरुं चित्त निरंतर लीन रहे एम भावना भावुं छुं ॥ ३॥

परमेश्वर अवलंबने रे ॥ मन० ॥ ध्याता ध्येय अभेदरे ॥ भवि० ॥ ध्येय समाप्ति हुवेरे॥

शेरे। मन०। रसवेधित अय जेमरे ।भवि.।६॥

अर्थः-कठोर अने कुरूप एवुं अय कहेतां लोहुं ते रस वेधित थवाथी जेम सुंदर अने कोमल एहवा सुवर्णपणाने प्राप्त थई जाय छे. तेम जिनेश्वरनी भक्तिमां चित्त लीन थाय ते चित्तने ते जिनेश्वरना गुण रागरूप वेधकरसनो योग थाय तो ते चित्त पूर्ण निर्मलपणाने प्राप्त थाय. एम सेवक आप समान अरिहंत पदने प्राप्त करे. ॥ ५ ॥

नाथ भक्तिरस भावथीरे। मन०। तृण जाणुं पर देवरे। भवि०। चिंतामणि सुरतरु थकीरे। मन०। अधिकी अरिहंत सेवरे। भवि० ।६।

अर्थः-आ घोर भवाटवीमां भ्रमण करता अशरण प्राणीओने हे भगवंत! मात्र एक आपज शरण छो, शिवपुरीए दोरवावाला छो. माटे आपज नाथ छो तथी हे प्रभु! आपनीज भक्तिरूपरसमां माहरुं चित्त लीन थाय छे. विषय कषाययुक्त कुदेवो तरफ तृणनी पेटे त्याग भाव उपज छे. चिंतामणी तथा कल्पवृक्षथी पण प्रभुनी सेवाने अत्यंत आदरणीय मानुं छुं. आपनी सेवा आगल ते चिंतामणी तथा कल्पवृक्षादि अतिशय तुच्छ पदार्थ भासन थाय छे.।६।

परमातम गुण स्मृति थकी रे ॥ मन० । फरश्यो आतम रामरे ॥ भवि० ॥ नियम कंचनता लहेरे ॥ मन० ॥ लोह ज्युं पारस पामरे ॥ भवि० ॥ ७ ॥

अर्थः-वली हे प्रभु ! संपूर्ण सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्र, अनंत निश्चल वीर्य विगेरे आ परमात्माना गुणोना चिंतनमां जो माहरो आत्म परिणाम स्पृष्ट थाय तो जेम पारस मणिना स्प थकी लोढा जेवी कुधातु कांचन थई जाय छे; ते विषय कषायमां परिणमतो माहरो आत्मा ते प कांचन समान शुद्ध परमात्म पदने प्राप्त थाय ॥ ७

निर्मल तत्त्व रुची थई रे ॥ मन० ॥ करजो जिनपति भक्तिरे ॥ भवि ॥ देवचंद्र पद पामशो रे ॥ मन० । परम महोदय युक्तिरे ॥ भवि० ॥ ८ ॥

अर्थः-भावदयाना आवेशे मित्रभावना युक्त स्तवनकर्त्ता श्री देवचंद्र मुनि भव्यजीवो प्रति सदुपदेश आपे छे के आभव परभव संबंधी विषय-भोग तथा मान पूजा विगेरे पौद्गलीक भावनी

आशंसा तजी, मात्र एक शुद्धात्म तत्त्वना रुचिवान थई, ओघसंज्ञा तथा लोक संज्ञा परिहरी, विधि विवेक पूर्वक सर्वे जिनमां शिरोमणि श्री अरिहंत भगवंतनी भक्तिमां आणा सेववामां लीन थजो तो सर्वे देवोमां चंद्रम समान अरिहंत भगवंत सदृश परमात्म पदने पामशो. एज उत्कृष्ट स्वाधीन अविनश्वर महोदय प्राप्त करवानी युक्ति छे ॥८॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ कलश ॥ राग धन्याश्री ॥

वंदो वंदोरे जिनवर विचरंता वंदो, कीर्तन स्तवन नमन अनुसरतां ॥ पूरव पाप निकंदोरे जिनवर विचरंता वंदो ॥ १ ॥

अर्थः—विहरमान जिनेश्वरने हे भव्यो ! भाव सहित वंदो, तेओना सद्‌गुणोनुं कीर्तन करो, तेओनुं स्तवन करो, मार्दव परिणामी थई तरण तारण जिनेश्वरने नमो, तेओनी आज्ञाने अनुसरो, जेथी पूर्वे बांधेलां अनेक प्रकारनां कर्मो निर्मूल थाय ॥ १ ॥

जंबु द्वीपे चार जिनेश्वर, धातकी अ
आणंदो ॥ पुष्कर अर्द्धे आठ महामुनि,
चोसठ इंदोरे ॥ जिनवर० ॥ २ ॥

अर्थ—जंबुद्वीपमां चार, धातकीमां आठ अने
रार्धमां आठ एम सर्वे मली वीश तीर्थंकर विह
जेने महारिद्धिना धारक एवा चोसठ इंद्रो प
छे ॥ २ ॥

केवली गणधर साधु साधवी, श्रावक श्रा
वृंदो ॥ जिन मुख धर्म अमृत अनुभवतां,
मन आणंदोरे ॥ जिन० ॥ ३ ॥

अर्थः—श्री तीर्थंकरना मुख कमलमांथी
अमृत समान वचनोने अनुभवतां तेनो आस्वाद
केवली गणधर सासु साधवी श्रावक श्राविका सम
जीवो शद्ध आनंदमां मग्न रहे छे ॥ ३ ॥

सिद्धाचल चोमास रहीने, गायो जिन
छंदो ॥ जिनपति भक्ति मुक्तिनो मारग, अ
शिवसुख कंदोरे ॥ जिन० ॥ ४ ॥

अर्थः—सिद्धाचल क्षेत्रमां चोमासु रहीने जिने
वित्र गुणोनुं जेमां वखाण छे एवा छंदो (स्तव

वनाव्या-कारणके जिनेश्वरनी भक्ति तेज मुक्तिनो मार्ग छे तथा तेज अनुपम अव्याबाध स्वाभाविक शिवसुखनुं मूल छे ॥ ४ ॥

खरतर गछ जिनचंद सूरिवर, पुण्यप्रधान मुणिंदो ॥ सुमतिसागर साधुरंग सु वाचक, पीधो श्रुत मकरंदोरे ॥ जिन० ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे स्तवन कर्त्ता श्री देवचंद्र मुनि पोतानी परंपरा वखाणे छे, जेणे जिनप्रणीत सूत्रनो शुद्ध आस्वादन लीधो छे एवा खरतर गछमां श्री जिनचंद्र सूरि भट्टारक नामे प्रधान आचार्य थया, तेओ श्रीना शिष्य प्रधान पुण्यवान मुनिशिरोमणि श्री पुण्यप्रधान नामे महोपाध्याय थया, तेओना शिष्य सुमतिना समुद्र जेवा श्री सुमतिसागर नामे उपाध्याय थया, तेउना शिष्य मुनिपणामां जेने रंग लाग्यो छे एवा साधुरंग वाचक थया ॥ ५ ॥

राजसार पाठक उपकारी, ज्ञानधर्म दिणंदो ॥ दीपचंद सद्गुरु गुणवंता, पाठक धीरगयंदोरे ॥ जिन० ॥ ६ ॥

अर्थ:—ते पछी आवश्यकोद्धार प्रमुख ग्रंथना कर्त्ता सुविहित सामाचारी धारक श्रीराजसागरजी महोपाध्याय थया, ते पछी न्यायादिक ग्रंथ अध्यापक सूर्य समान तपस्वी ज्ञानधर्म उपाध्याय थया, ते पछी माहरा सद्गुरु ज्ञान दर्शन चारित्र गुणना धारक, पंचाचारना पालक, उपसर्ग परिसह सामे गजेंद्रनी पेठे निश्चल रहेवावाला महावीर वीर दीपचंद्र पाठक थया।

देवचंद्र गणि आतम हेते, गाया वीश जिणंदो ॥ रिद्धि वृद्धि सुख संपति प्रगटे सुजस महोदय वृंदो रे ॥ जिन० ॥ ॥६॥

अर्थः—एमना शिष्य में देवचंद्र गणिए आतम पदार्थने कर्म कलंकथी मुक्त करवाना हेतुए विहरमान वीश तीर्थंकरना गुण गाया जेथी कर्म कलंक वडे आच्छादित थएली आत्मानी ज्ञानदर्शनादि अनेक रिद्धिओ प्रगटे, वृद्धिने पामे तथा तज्जन्य सुख संपत्ति प्रगट थाय, अखूट निर्मल यश विस्तरे, आत्मीय गुण समूहनो महोदय थाय, सर्वत्र कल्याण वर्ते, सर्व जीव परमानंद ने प्राप्त थाय ॥ ६ ॥

॥ संपूर्ण ॥

बालावबोधकार प्रशस्ति

॥ कलश ॥ हरिगीत छंद ॥

विहरमान जिनंद मंगल, कंद ज्ञान दिनंद जे,
विकसावता नय कर समूहे, भव्य उर अरविंद जे;
उपशम सुधा सागर उलासन, पूर्ण अनुपम चंद जे,
भवदंद फंद निकंदि पायक, शुद्ध परमानंद जे ॥ १ ॥

मोह मदिरामां मचेला, कुमति मत मातंगना,
मद गंजवा बल भंजवा, बलवान प्रभु पंचानना;
ते तीर्थनायक तत्त्वदायक, वीश जिनवर गुणमणी,
"देवचंद्र गणि" पवित्र मतिए, स्तव्या गुणमाला
भणी ॥ २ ॥

ते स्तवन वीश विषे अतिशे, बोध अनुपम वरणव्यो,
त्यां चित रमण हित मुज मनोरथ, अरथ लखवानो थयो;
मधु मासमां अति मधुर स्वरथी, कोकिला जे गाय छे,
ते तो खरेखर आम्र तरुना, पुष्पनोज पसाय छे ॥ ३ ॥

तेम गुण निधि " सद्गुरु, मनसुख " तणो
आश्रय लही।,
" संतोष " ग्रेमे अर्थ आ, में लख्यो 'दोहदमां'
रही;
उगणीश छासठ साल आसो, शुक्ल सातम शशि दिने,
जिनराज भक्ति पसायथी, पूर्ण थयो उल्लसित मने ।४॥

हे भव्य शुभ मति विनति आ, मम क्षमायुत उरमां धरी,
गुण क्षीर ग्रहजो हंस पेठे, नीर अवगुण परिहरी;
भरपूर सुखप्रद ग्रन्थ आ, शशि सूर सम शाश्वत रहो,
वांचन मनन अनुभव करी, भवि शशि रमा अनुपम
लहो ॥ ५ ॥

श्रीमद् देवचन्द्रजी रचित अप्रकाशित स्तवन संग्रह

संग्राहक—अगरचंद नाहटा

१ ऋषभ स्तवन ।

ढाल—मोरा आतमराम, कईयइ दरसण पास्यु ए देशी ॥

मोरा ऋषभ जिणंद, कईयइ दरसण पास्युं ॥ मो० ॥

सिद्धाचलनी पाजइ चढतां, मरु देवा सुत ध्यासुं ।
घणा दिवस नो अंग उमाहो, ते पामी सुख भास्युं । १ मो०॥

निरमल नीरइ प्रभु नइ अंगइ, कहीय(इ) न्हवण करास्यूं ।
केसर चंदन मृगमद घसि नइ, तोरइ देह लगास्युं ॥ २ मो० ॥

पूज करी नइ आगलि वइसी, पांचे अंग नमास्युं ।
भाव धरीनइ मननइ रंगइ, नाभ नंदन गुण गास्युं ॥३ मो०॥

वार २ तुझ मुख निरखी, हीयडइ हरखति थास्युं ।
तोरो ध्यांन धरी अति सारो, सकल मिथ्यात विनास्युं ॥४मो०॥

आठ करमनो अंत करीने, दुरगति दूरि गमास्युं ।
चंद कहइ इम मनने रंगइ, तुझ ध्यांनइ मन लास्युं॥५ मो०। इति

(देवचंद्रजी लिखित प[त्र] में होने से उनका रचित संभव है)

ध्यान चतुष्क विचार गर्भित शीतल जिन स्तवन

अथ ध्यान च्यार स्तवन।

दूहा—

प्रणमी शीतलनाथ पय, सुख संपति दातार।
विघन विडारण भय हरण, धरि मनि भाव अपार ॥ १ ॥
श्री सद्गुरु ना पय नमी, मन सूं करीय विचार।
ध्यांन भेद संखेप सूं, कहिसूं मति अनुसार ॥ २ ॥

ढाल—रामचंद्र कइ बाग, एहनी।

च्यार ध्यान विसतार, सुणिज्यो भाव धरी री।
कहिस्युं श्रुत अनुसार, ग्रहि मनि टेक खरी री ॥ १ ॥
आर्त्त रौद्र वलि धर्म, चउथउ शुकल थुणयउ री।
कहिस्युं मति इक चित्त, जिम गुरु पास सुणयउ री ॥ २ ॥
संका शोक प्रमाद, कलह चिंत भयकारी।
भ्रम उनमाद विशेष, धन संग्रह अधिकारी ॥ ३ ॥
काम भोग नी चींत, जे जन मन मइं राखइ।
आर्त्त ध्यांन तिण माहि, लहीयइ इम श्रुत साखइ ॥ ४ ॥
प्रथम ध्यान ना पाय, च्यार कह्या श्रुत संगइ।
प्रथम अनिष्ट-संयोग, बीजउ इष्ट-वियोगइ ॥ ५ ॥
तीजउ रोग-निमित्त, मन मइं चिंत धरइ री।
चउथउ सुख नइ काजि, जीव नियाण करइ री ॥ ६ ॥

यक्ष दैत्य विष साप, जल थल जीव सहू री।
सायण डायण भूत, गाजै सींह वहू री ॥७॥
नयडइ आव्यइ दुक्ख, जे मन क्रोध करइरी।
टालूं दूरइ एह, मन मइं एम धरइ री ॥८॥
एहवउ दुष्ट स्वभाव, जिण रइ चित्त रहइ री।
आर्त्त अनिष्ट-संयोग, जिनवर तेथि कहइ री ॥९॥
भोग सुहाग विशेष, चित वंछित सुह दाता।
बांधव मित्र कलत्र, ऋद्धि पितृ वलि माता ॥१०॥
हुयइ इष्ट-वियोग, एहवउ ध्यांन मिलइ री।
करुं कोइ उपाय, जिणसुं इष्ट मिलइ री ॥११॥
इष्ट मिलेवा काज, मन संकल्प वहइ री।
ध्यांन ए इष्ट वियोग, बीजउ आर्त्त कहइ री ॥१२॥
कास स्वास जर दाह, जरा भगंदर रोगा।
पित्त श्लेष्म अतिसार, कोष्ठादिक ना योगा ॥१३॥
एहवइ ऊपनइ रोग, मन मइ चिंत करइ री।
ओखध करः अपार, सुख कारण विचरइ री ॥१४॥
क्रोध मोह मद लुद्ध, मन मइ दुष्ट धरइ री।
रोग चिंत इण नाम, तीजउ आर्त्त वहइ री ॥१५॥
राज रिद्धि सुख पूर, काम भोग नित चाहइ।
धन संतान निमित्त, देह कष्ट वहु साहइ ॥१६॥
वासुदेव चक्रवत्ति, सुर किन्नर पद काजइ।
इह लोक नइ परलोक, सुख वांछा मन छाजइ ॥१७॥

करइ तपस्या नत्य, मन मइ जे पद चाहइ ।
भएयत्र नियाणो नाम, आर्त्त अंत्य अवगाहइ ॥ १८

॥ इति आर्त्त ध्यान ॥

दूहा—

सदा त्रिशूलउ शिर रहै, आंखे क्रोध अपार ।
बोलइ इम कडूआ वचन, मखइ मुकार चकार ॥१॥
दुष्ट परिणामी खल सदा, विनय हीन वाचा (ल)
... ... ॥ २ ॥
... ... ।

(पत्रांक २ नहीं मिलने से रौद्र ध्यान का शेष वर्णन धर्म ध्यान का प्रारंभिक वर्णन अधूरा रह गया है)

...... नवि करइ, प्रथम पायो तिको जाण रे ॥ ३ ॥ ए०
एह मुझ जीव अनादिनो, कर्म जंजीर संयुक्त रे ।
पाडूआं कर्म कलंक थी, कीजस्यइ किण दिनइ मुक्त रे ।
आत्मगुण परगट कदि हुसै, छोडि पर पुद्गल संग रे ।
एह विचार अहनिशि करइ, यह बीजो ध्रम अंग रे ।
जीव उदय सुभ कर्म रइ, पामइ छइ सुक्ख अपार रे ।
अशुभ उदय दुक्ख ऊपजइ, एह निश्चय करि धार रे ॥
नरक मइ दुख जेतइं सह्या, तेह आगे किसूं एह रे ।
पाय तीजइ इसउ चींतवइ, इम करइ भव तणउ छेह रे ॥
शब्द आकार रस फरस सब, गंध संस्थान संघयण रे ।
रूप ध्यावइ वली आपणउ, तजीय मोहादि वलि मयण रे ।

जीव जग तीन मइ छइ किना, जीव मइ तीन जग सार रे।
जीव वडउ जगत्रय वडउ, जीव जग तीन सिणगार रे ॥ ६
एह सरूप जगत्रय तणउ, चींतवइ चित्त मइ नित्य रे।
तेथि संस्थान-विचय भलउ, पाय चउथउ ध्रम कित्त रे ॥ १०

दूहा—

धरम ध्यांन ध्यायां पछी, सुख शिव पद दातार ।
शुकल ध्यांन ध्यावे भविक, आतम रूप उदार ॥१॥
च्यार पाय तिण शुक्ल ना, पृथक्त-वितर्क विचार ।
बीजउ शुक्ल सुहामणउ, एक-तर्क अविचार ॥२॥
तीजउ शुक्ल श्रुतइ कह्यौ, सूक्ष्म-क्रिया प्रतिपाति ।
चउथउ शुक्ल ध्यावइ सदा, छिन्न-क्रिया प्रतिपाति ॥३॥

ढाल-मालीय केरे वाग मइ एह नी

एक द्रव्य परयाय सुं, शुक्लइ मन लावउ लो ॥ अहो०
उतपति थिति इम भंग सूं, तिण मांहि मिलावउ लो। अहो० १।
साते नय दो नय थकी, जग रूप विचारइ लो । अ०।
तीन योग इक योग सूं, मन मांहि उचारइ लो ॥२॥ अ०
पृथक्त-वितर्क विचारते, शुक्ल ध्यांन कहावइ लो । अहो० ।
निश्चय मन ध्यावइ सदा, ते चढतइ दावइ लो। अहो० ।३।
एक वस्तु नय सात सुं, मांहो मांहि मिलावइ लो। अहो०
एह मिलइ दो नय थकी, ए च्यार मिलावइ लो । अहो० ।४।
केवल तदि पामीं करी, ते ध्यांन ज ध्यावइ लो ॥ अ०

एक-तर्क अविचार ते, शुक्ल बीजउ पावइ लो ॥ अहो ॥५॥
अंतमुहुरत आयुष थकइ, ध्यान तीजइ आवइ लो ॥ अ० ॥
निज गुण मोक्ष आवी रह्यां, दोय योग रूंधावइ लो ॥अ०॥६॥
एक योग बादर अछइ, तेहिज पिण रोकइ लो ।
सूक्ष्म उसास नीसास सूं, निज रूप विलोकइ लो ॥७॥
सूक्ष्म उछास लेतउ थकउ, निश्चय पद धारइ लो । अ० ।
सूक्ष्म-क्रिया प्रतिपातीयउ, तीय शुक्ल संभारइ लो । अ० ॥८॥
शैलेशी करतां थकां, सब जोग खपाइ लो ॥ अ० ॥
पांच अक्षर परिणाम मइ, अद्भुत पद ध्यावइ लो ॥ ९ ॥
परवत जिम देह छोडि नइ, ते मोक्षइ जावइ लो ॥ अ०
ह्रस्व वरण इम पांचमइ, चउथउ शुक्ल भावइ लो ॥ १० ॥
दोय ध्यान सब जीव तउ, निश्चय करि ध्यावइ लो । अ०
धर्म ध्यान भव्य जीव जे, तेहिज ध्रुव पावइ लो ॥ ११ ॥
शुकल ध्यान पंचम अरइ, निश्चय करि नावइ लो ॥ अ०
पहिलो संघयणनो धणी, शुकल ध्यान ज पावइ लो ॥१२॥
श्री शीतल जिन वंदतां, दोय ध्यान राखइ लो ॥ अ० ॥
धरम ध्यान मन भावीयइ, देवचन्द्र इम भाखइ लो ॥१३॥

पास जिणंद जुहारीयइ ए ढाल

ध्यान च्यार मइ वर्णव्या, श्री आगमनइ अनुसारइ रे ।
आर्त्त रौद्र नइ परिहरि, भविक धरम चित धारइ रे ॥१॥
श्री शीतल जिन वंदना, हुं करूं सदा वार वार रे ।
भवियण प्राणी जे हुवइ, ते तीजउ ध्यांन संभारइ रे ॥२॥

शुक्ल ध्यांन हिवणां नहीं, इण पंचम दूसम आरइ रे ।
धरम शुक्ल दोइ ध्यांन सूं, तिण प्रीति घणी मन माहरइ रे ॥३॥
युग प्रधांन जिणचंद ना, शिष्य पाठक गुणे सवाया रे ।
पुन्यप्रधान शिष्य गुण निला, श्री सुमतिसागर उवझाया रे ॥४॥
साधुरंग वाचक वरु, तसु सीस पंडित विख्याता रे ।
राजसार पाठक अछइ, जे जिनमत सूं अति राता रे ॥५॥
ज्ञानधरम शिष्य तेहना, वाचक पदना धारी रे ।
तासु सीस राजहंस× नउ, मुनि राजविमल† सुविचारी रे ॥६॥
तिण ए ध्यांन तणउ रच्यउ, तवन शीतल जिन केरउ रे ।
भणतां गुणतां संपदा, दिन २ उछव अधिकेरउ रे ॥७॥
इति ध्यांन चतुष्क स्तवनं ॥ पं० देवचन्द्र कृतं ॥

लिखतं पं० दुर्गदास मुनिना

(पत्रांक २ नहीं मिला) पत्र ४ पंक्ति ११ अ० ३६।४०

×दीपचंद्रजी का दीक्षावस्था का नाम है ।

†देवचन्द्रजी का दीक्षावस्था का नाम है ।

---

३ लींबडी शान्ति जिन स्थापना स्तवनम्

वो सजन जन जिनवर वंदन, श्री शान्तिनाथ गुण वृंदा र ।
स गुण रागे निज गुण प्रगटे, भाजे भव भय फंदा रे ॥१॥
श्वसेन अचिरा नो नंदन, पूरण पुन्ये लहीये रे ।
ांन एकत्वे तत्व विबुद्धे, शुद्धातम पद ग्रहीये रे ॥२॥

संवत अढारसें सातें वरसें, फागुण सुदि बीज दिवसे रे
श्री शांति जिणेसर हरषें थाप्या, (अति) बहुमाने सिव सुख
वरसे रे ॥
लींबड़ी नयरी मंडण मनोहर, शांति चइत प्रसिद्धो रे ।
वृद्ध शाख पोरवाड़ प्रगट जस, वोहरे डोसें की(ली?)धो रे ॥
जिन भगते जे धन आरोपे, धन धन तुसी मत धारो रे ।
गुणी राग थी तनमय चितें, पुद्गल राग उतारो रे ॥५
तीर्थंकर गुण रागी बुद्धें, रत्नत्रयी प्रगटावो रे ।
'देवचन्द्र' गुणरंगे रमतां, भव भय सर्व मिटावो रे ॥६

इति शांति स्तवन संपूर्ण
(पत्र १८७ वां) आनंदजी कल्याणजी पेढ़ी भंडार लींबड़ी

---

४ पार्श्वनाथ गीत

ढाल-सखी री प्यारउ र, एहनी

सखो री वामा राणी नंदा, अश्वसेन पिता सुखकंदा ।
प्रभावती राणी इंदा, दीजै मुझ परम आणदा हो लाल ॥१॥
वीनती ए मुझ धरियइ, पातक सगला हरीयइ ।
मुझ उपरि महिर ज करीयइ, विम केवल कमला वरीयइ होलाल॥२
सखीरी तुझ सेवन पाई दुहली, योनि गई सहु अहिली ।
हिव सेवा कीजइ सहिली, मुझ इच्छा पूरउ वहिली हो लाल ३।
सखीरी ते सहू पातक रोकइ, ते जय पामइ इण लोकइ ।
रिद्धि लहइ बहु थोकइ, जे तुझ पद पंकज धोकइ हो लाल॥४॥

७ अष्ट रुचि सज्झाय ।

सुरपति नतदेव अमित गुणी श्री भाव प्रकाशक दिनमणी ।
शासनपति वीर जिनेश ना, गणधर सोहम शुचि मना ॥१॥
शुचिमना सोहम सीस जंबू, भणी सीख कही भली ।
सुणो आतमतत्व रोचक, करी निज मति निरमली ॥
ए आठ कारण मोक्ष साधक, परम संवर पद तणी ।
करी आदर अतिहि उद्यम, यतन साधन अति घणी ॥
अभिनवा गुणनी वृद्धि थास्यै, दोष क्षय जासै सवे ।
ते माटि सेवौ सूत्र आणा, सुख लहौ जिम भव भवे ॥२॥

'अनुभव रंगीले आतमा '-ए ढाल

पहिलुं कारण सेवियै, भाखै वीर जिणंद रे ।
नित नित नवुं नवुं सांभलौ, शुद्ध धरम सुख कंद रे ॥
थास्यै परम आणंद रे, ऊगै ज्ञान दिणंद रे, झलके अनुभव चंद रे ॥१॥
आणा रंगी रे आतमा, तजिसुं सर्व प्रमाद रे ।
करि आगम आस्वाद रे, वसि निज तत्व प्रसाद रे ॥ आंकणी ॥
गीतारथ श्रुत-धर मिलै, आणी अति बहु मान रे ।
नय निक्षेप प्रमाण थी, अभ्यासौ श्रुत ज्ञान रे ॥
भजितुं जिनवर आण रे, पामैसुखनिरवाण रे, परममहोदयठाण रे ॥२॥
बीजे थानक श्रुत तणौ, लाधो तत्व विचार रे ।
स्व पर समय निरधार थी, चउ अनुयोग प्रकार रे ॥
ज्ञेय पणै सवि भाव रे, रहज्यो आतम स्वभाव रे, तजि पर
समय विभाव रे ॥३॥

आगम अर्थनी धारणा, थिर राखो भवि जीव रे।
ज्ञान ते आतम धर्म छे, मोह तिमिर हर दीव रे।
श्रुत अमृतरस पीव रे, साधन एह अतीव रे, संवर ठाण
सदीव रे ॥४॥

पूरव संचित कर्म नी, निर्जरा थाये जेम रे।
तिम तम संवर सेवज्यो, साधि धर्म धरि प्रेम रे॥
चिन्तवजो मनि एम रे, कर्म लहै हिव केम रे, मुक्त
पद निर्मल क्षेम रे ॥५॥

पंचम थानक आश्रयो, धर्म रुची जीव जेह रे।
तेहनी करवी रक्षणा, वाधइ धर्म सनेह रे॥
जिम करसण जल मेह रे, वरसावइंम देह रे, तो लहस्यो
निज ध्रुव गेह रे ॥६॥

छट्ठ. चौविह संघनै, सीखावौ आचार रे।
क्रिया करता रे गुण वधै, सधै क्षमादि प्रकार रे।
नासै दोष विकार रे, थाये ध्यान विसतार रे आलय शुद्ध
विहार रे ॥७॥

गुणवंत रोगी ग्लान नो, वेयावच्च करो रंग रे।
अनुकंपा सवि दीन नी, उत्तम भक्ति प्रसंग रे।
भावै विनय तरंग रे, शासन राग (ग?) उमंग रे, सहज
सुभाव उत्तंग रे ॥८॥

साधर्मिक जन सर्व में, कहवी थाय कसाय रे।
तजि सवि दोष अनुष्ठान नो, क्षमण कर्यां सम थाय रे।

इम जंपे जिनराय रे, समता शिव सुख दाय रे
समनिधि मुनि गुण गाय रे, सुरपति सेवे तसु पाय रे ॥६॥
तीजे अंगेरे उपदिश्यो, ए उपदेश उदार रे।
जिण आणा ए वर्त्तस्ये, ते गुणनिधि निरधार रे ॥
ज्ञानसुधा (जल) दिल धार रे, वरसे श्री गणधार रे,
पामे तसु सुख सार रे ॥१०॥ आ
रयण सिंहासन वैसी ने, दाखे जगत दयाल रे।
देवचन्द्र आणा रुचि, होइज्यो बाल गोपाल रे।
आतम तत्त्व संभाल रे, करज्यो जिन पति चाल रे, थास्यो
परम निहाल रे ॥११॥

८ पद

राग धन्यासिरी

मेरे जीउ क्या मन मइं तूं चीतइ।
इक आवत इक जात निरंतर, इण संसार अनंतइ १। मेरे जीउ।
करम कठोर करे जीउ भारीं, परत्रिय धन निरखंतइ।
जनम मरण दुख देखे बहुले, चउगइ मांहि भमंते।२। मे०।
काम भोग क्रीड़ा मत करना, जे बांधे हरखंते।
वेर वेर तेहिंज भोगवता, नवि छूटे विलवंतइ रे।३। मे०।
क्रोध कपट माया मद भूलइ, भूरि मिथ्याति भमंतइ।
देवचंद्र सदा सुख दाई, जिन ध्रम एक एकंतइ।४। मे०।

९ मेरे प्रीउ क्यु न आप विचारो ।

कइसै हो, कइसै गुणधारक, क्या तुम लागत प्यारो ।१। टेक ।
तजि कुसंग कुलटा ममता को, मानो वयण हमारो ।
जो कछु झूठ कहे इन में तो, मोकुं सूंस तुम्हारो ।२। मे ।
यह कुनार जगत की चेरी, याको संग निवारो ।
निरमल रूप अनूप अबाधित, आतम गुण संभारो ।३। मे
मेटि अज्ञान क्रोध दसम गुण, द्वादश गुण भी टारो ।
अक्षय अबाध अनंत अनाश्रित, 'राजविमल' पद सारो ।४। मे० ।

---

१० चरित्र सुख वर्णन द्वादश दोधक

पर गुण सै न्यारे रहै, निज गुण के आधीन ।
चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।१।
इह नित इह पर वस्तु की, जिने परिख्या कीन ।
चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।२।
जिणहुं निज निज ज्ञान सुं, ग्रहे परिख तत्व तीन ।
चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।३।
दस विध धरम धरइ सदा, शुद्ध ग्यांन परीवीन ।
चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।४।
समता सागर में सदा, झील रहे ज्युं मीन ।
चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।५।
आसा न धरै काहू की, न कबहूँ पराधीन ।
चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।६।

स्व संयम पावस वसै, दहै प्रमाद दुख खीन।
चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।७।
पुद्गल जीव की सक्ति सब, जरत सप्त भय हीन।
चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।८।
सप्तम गुण थांनक रहै, कीयो मोह मसकीन।
चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।९।
क्षपकोपशम पयड़ो चढ़ै, आतमरस सुधीन।
चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।१०।
तूर्य ध्यांन ध्याते समं, कीयें करम सब छीन।
चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।११।
देवचन्द्र वाचै सदा यह मुनिवर गुण वीन।
चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।१२।
(इति प्राकृत भापया समस्या दोधक द्वादश, कृता पं० देवचंद्रेण)

---

११ हीयाली।

॥ ढाल राय कुयरि वरि बाई भलो भरतार ए देशी ॥
इक नारि रूपी रूयड़ी, जनमी ज साते तात ॥
मलपती मानव भूलरइ, सगलां चित्त सुहात ।१।
कहो रे चतुर नर ए हीयाली सार ॥
जो तुम्हे चतुर विचार ॥ क० ॥ आकणी ॥
भरतार पासै नित रहै, बोलइ न भरता संग।
अवर पुरख आवी मिल्यां, वात करइ मन रंग ॥२॥ क०॥

दोई नेत्र पति सांम्हा सदा, देखै न पति नो अंग ।
थाताल् जीहा विना, मोटा कान अभंग ॥३॥ क०॥
विचि विचै उज्जल नर मनोहर, भरि साख द्यें हुंकार ।
पर कांधइ न चढे कदे, चरण विना चलै सार ॥४॥ क०॥
इक नार सुं जासु वैर छै, वेवै न शीत न ताप ।
देवचंद्र भाखइ तेहनो, मोटां सू मेलाप ॥५॥ क०॥

इति हीयाली संपूर्ण ॥

(हीयाली १ सुमतरंग १ दुर्गदास कृत सह। पत्र १)
(नं० ३-५ को छोड़ सभी रचनायें शाखा भंडार बीकानेर से प्राप्त हुई हैं)

उदय स्वामित्व पंचाशिका

वंदित्तु वद्धमाणं, जिणं च गुरु-राजसार-पय-कमलं ।
गइ-आइएसु वुच्छं, समासओ उदय-सामित्तं ॥१॥
थीणतिगं पुन इत्थी, नरतिरि-सुर-निरय-आणुगइ-पुव्वी ।
वेउव्विदुगं जाइ, चौ आइल्लाइं संहनन-दुगं ॥२॥
आहार-दुगं संठाण-छक्क, आगइं आइल्ल पंच सुभखगइं ।
थावर सुहम चउक्कं, आयव-उज्जोय-जिण-उच्चं ॥३॥
मीसं सम्मत्तं मिच्छं अणाचउ, दुहग-दुग वीय कसाय चउ-परवा ।

मिच्छ निरयाणुपुव्वी, विणु सासाणे संमी मीस-गुणे ।
अणुजाइ विणु (दु) गहीणा, सगरो पुण सयरि मणुअत्ते ॥६॥
सम्मनिरयाणु-पुव्वी, सहिया मिगुणीसमोह-घम्माए ।
पंसाइसु मणगच्चे, निरयाणु-पुव्वीविणा उदओ ॥७॥
सिरदिग विगुणतनवगं, निउव्वी आहार तित्थ दुगहीणा ।
सगहिय सग ओहो, निरिणा दिय मिच्छत्त सव्व थीए ॥८॥
मीसाइ सुसणक्खवग, पणिंदिसो इगाइ पण गई ।
वियलतियं चिय अट्ठविणु, पणिंदि तिरि ओह नवनवई ॥९॥
मीस दुगहीण मिच्छे, मिच्छ अपज्जत्त नाम विणु थीए ।
अणुतिरि-पुव्वी-विहूणा, मिसज्जआमीसि इगनवई ॥१०॥
सम्मतिरि पुव्वो सहिआ, अमीस सम्मे दुहग सग पुव्वी ।
विणु देसे पज्जत्ते, अणिक्कि अपजत्त सगनवई ॥११॥
पुंमपज्ज नपुंविण, जोणिमई सुओ हत्थनवई ।
अपज्जत्ते तिरि परघा, मीस दुचो सुभग वज्जोयं ॥१२॥
सुह असुहखगई दुस्सरं, पज्जत्तय थीण पणग संघयणा ।
आगइ पण आदित्ता, पणिंदिओहेसु वज्जेज्जा ॥१३॥
मिच्छोहे एगत्तरि, भरे सुथावर दुगंच साहरणं ।
आयव दुगतिरि पणदस, विणुदुसयं ओह मिच्छत्ते ॥१४॥
मीस आहार दुगतित्थ, विणु सासणि अपज्ज मिच्छविणा ।
अण चउत्तर पुव्वि विणा, समीसमीसेतु इगनवई ॥१५॥
सम्मनर पुव्विखेवे, अमीस सम्मेय दुहगसग-पुव्वी ।
विणुदेसे सपमाए, इगसी पचक्ख तीय विणु ॥१६॥

मपमादीये सुओ हुज्ज, पज्जनरेयी अपज्ज विणुओहो ।
इथीसुय आहार दुगे. दुवेद अपज्ज विणु ओहो ॥१७॥
अपजत्तयतिरि समनर. अपज्ज नाणतूणं च नरतियगं ।
उदओतिरिति गुणु उदओ, देवेतिय थीण न पुंवेओ ॥१८॥
नरतिरि निरयाण नवं, एगिंदिय चउदस च संठाणा ।
पण अंतिम थावर चऊ, अपवदुहगंति दुस्सरयं ॥१९॥
कुखगई वज्जिहु, सगसयरी ओहमास दुगहीण ।
मिच्छे मिच्छं वाए, उणुसुर पुव्वी विणा तइए ॥२०॥
मीस जुआ संमत्ते, सुर पुव्वी सम्मजू अमीस विणा ।
देवाःथी विणुदेवी, पुरिस विणा सेसओ उव्वं ॥२१॥
एगिंदिएसु पुंपुण, सुर एगिंदिहिण चौजाई ।
उलोवंगय पणदस, सुभगति जिण चौग दुस्सरयं ॥२२॥
तसजखगई विणुओहे, मिच्छे अस्सीइ थाण सुहमतिगं ।
परघायव दुगमिच्छं, वज्जिय गुणसयरि सासाणे ॥२३॥
विणुसाहरणं पुढ़वी, साहरणायव विहिण आऊसु ।
आयव विणुवण आयव, दुग साहरणं विणातेउ ॥२४॥
वाउ तसेयवज्जं, एगिंदिसोदयाइपण पगई ।
सगलिंदिये सुचिवलं, वज्जियं ओहोइ ओहुच्च ॥ २५ ॥
एगिंदिय ओहेपिव, ओराल उवंग कुगइ छेवट्ठं ।
तरसदुस्सरयं वज्जहु, थावर आयाव साहरणं ॥॥२६
सुहुम वियलस्सेहो, मणवय जोगेसु नव सयं ओहो ।
पुव्वी चउ अपज्जत्तं, पणिंदिओहे सुथजिका ॥२७॥

अणुमयवयणो विगळां, खविज्ञ सुरतिरि नरय विउव्वि आहारे।
दुगचो पुव्वी अपज्ञा, वक्किय सामन्न सुरलंगे ॥२८॥
वरलोहि थीण तिगं, सुस्सर दुस्सर पसत्य अपसत्था।
गई आयव पणदुग, सोसं विणु अपज्ञ जुअमीसे ॥२९॥
देवोहे नायदुग, दुदग तिग किंचि कुखगईहुंड।
संदनीयं लेवडु, सुर पुव्वी थीण चेउव्वे ॥३०॥
परघादुगसर दुस्सर, यगई सगई पमीस विणुमीसे।
संचयण छक संठाण, पंच अंतिम ओराल दुग पमत्तोहे ॥३१॥
आहारे न पुमित्थि, थीणतिय कुगई दुसरयं।
वज्जहु तम्मीसे पुण, सुसर सुगई अपरवा दुगे ॥३२॥
थावर चउजाइ आयम, नारय तियं च तित्थं घ।
आयवपुंथीवेओ, विणु पुरसे ओह सत्तसयं ॥३३॥
इत्थिसुइत्थिखेओ, हारगदुगपुरसवेअविच्छेओ।
सढे सुरतियहारग, पुंदुगतित्थं विणा ओहो ॥३४॥
अन्नाण दुगे ओहे, मिच्छेपगईय मिच्छ पच्चइया।
विब्भंगे चउजाई, थावर अणपुव्विहार दुगं ॥ ३५ ॥
मीस दुगायवतित्थं, विणुमिच्छोहे पि मिच्छ सासणि।
ताणतिगे समदिट्ठी, पच्चइया आहार दुग सहिआ ॥ ३६ ॥
कोहादिसु परबारस, कसायतित्थं विमुत्तु उइव्व ।
वेयकसायतिएनव, लोभे दश गुणि सुगुणठाणा ॥ ३७ ॥
समई एत्थेएपुण, पम्मत्त जुग्गा हवंति इगसीई ।
संढित्थो हाण दुग, विणासण नारोय पज्जिंगे ॥ ३८ ॥

सुहमेदेसेमिच्छे, सासाणमिसे सुनीय गुण ओहो ।
समजिण जुगा जिणजुत्त, सट्ठिपगइ अहक्खाए ॥ ३६ ॥
अविरय किण्हानीला, काउसु आहारतित्थ विणु ओहो ।
तेऊपम्हासु नारय, तियथावर जाइ चउतित्थं ॥ ४० ॥
तिरि पुव्वी आयविणु, ओहुट्ठ संयस जिण सुक्कोहे ।
केवल दुग नोमीस, समओहदं सोहनाणव्व ॥ ४१ ॥
जिणविणु अवरकुदंसण, थावर दुग आयवं चजाईतिगं ।
साहरणं विण चक्खु, अवरकुसमा जावखीण जिणं ॥ ४२ ॥
चउसय अविरय जुगा, हारग दुग जत्तवेअगे ओहो ।
सजिणाअसम्म कोहा, खायगे ओह पगईओ ॥ ४३ ॥
सुरविणु पुव्वीतियगं, आहार दुगं च सम्म मोहविणा ।
उवसमओहो सयगं, भव्वे ओहुव्व उवयगई ॥ ४४ ॥
मिच्छुत्तय भविवयरो, सन्नीसु अतित्थजाइ चउभावं ।
थावर दुग साहरणं, विणुतेरसयं ओह पुव्विअव्व ॥ ४५ ॥
नरतियगं देवट्ठं, आहार दुगंसुभगतिग सुगइं ।
संवयणागिइदसगं, आइल्लाणं जिणचउक्कं ॥ ४६ ॥
वजिजतुससन्नोसुअ, ओहे मिच्छे असुहमथीणतिगं ।
आयवपरधा दुगमिच्छा, दुस्सरकुगई विणाबीए ॥ ४७ ॥
पुव्वी विणु आहारे, ओहुव्वय थीण तिगविउव्विदुगं ।
ओरालिय सत्तरसं, आयव परघादुगं मीसं ॥ ४८ ॥
सुस्सर दुस्सरपत्तेय, साहारण खगइ दुगं विणाओहो ।
अणहारे कम्मणए निय निय गुण संभवं भणह ॥ ४९ ॥

इयन्तु हीरगणधर, सयंसाइ गुणधर्मं मगु-भाऊ।
वेसविजय बुध ह्रिओ, अजोगि अणुकीओ निग्नं ॥ ५०॥
सिरि "राजसार" पाया, वायगवर "नाणनन्द" कोसम्स।
"रामहंसस्स" सीसेण, "वेयचंद्रेण" भणियमिणं ॥ ५१॥

॥ इति श्री उदय स्वामिरत्न पञ्चाशिका समाप्ता ॥

जगनगरीय भण्डारस्थ पुस्तकात् प्रतिलिपिकृता मुनिविन-
सागरेण विक्रमाब्दे २००२ आश्विन शुक्ला पूर्णिमा।